चन्दामामा
मई १९८५

"तुम-सा कोई और कहां!"

"ऐसी महक कहीं और कहां."

जिंदगी की खुशनुमा
यादों-सी
सदाबहार ताजगी है
जिसमें!

ड्रीमफ्लॉवर टैल्क
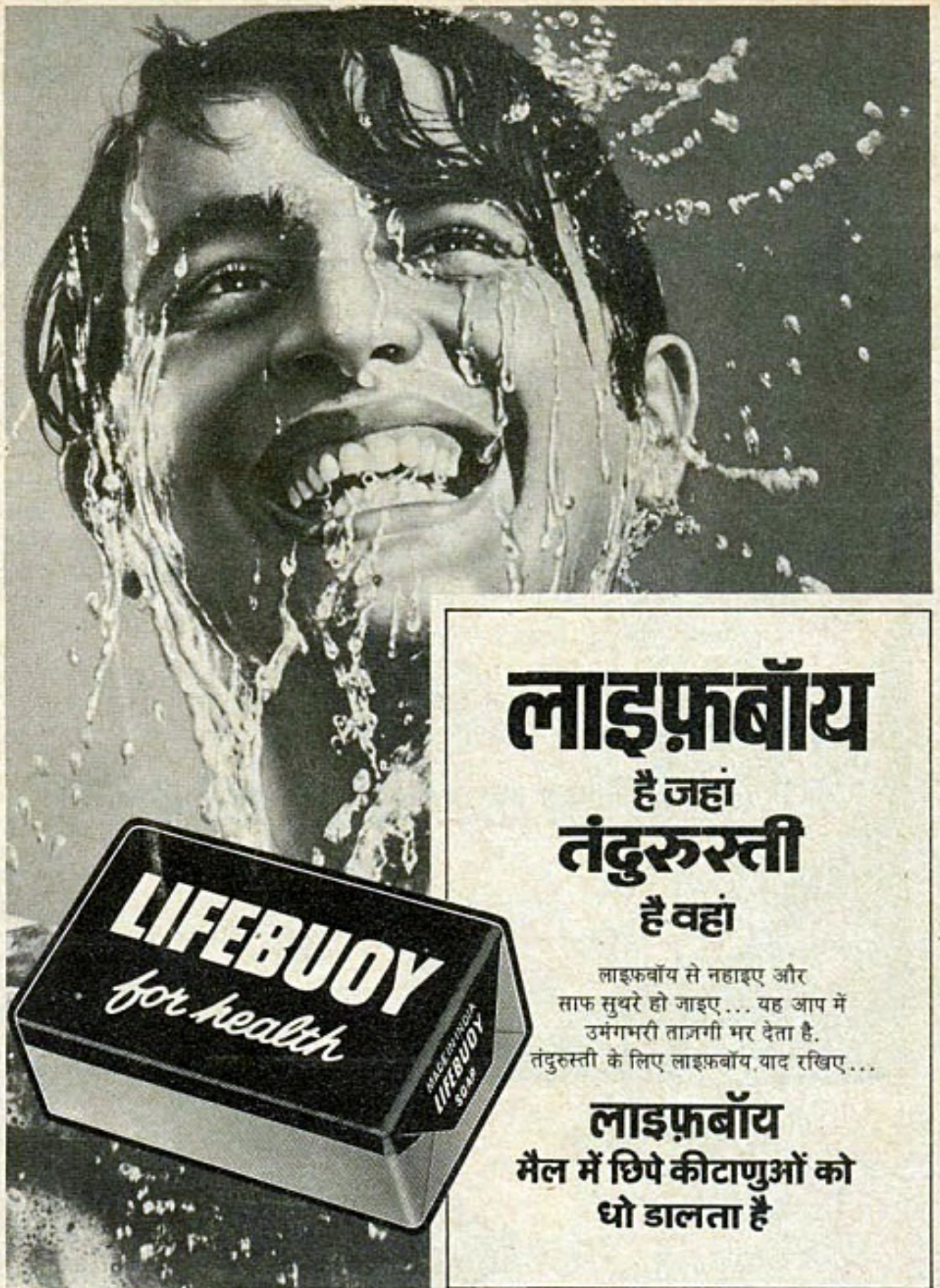
लाइफ़बॉय
है जहां
तंदुरुस्ती
है वहां
लाइफ़बॉय से नहाइए और
साफ सुथरे हो जाइए... यह आप में
उमंगभरी ताज़गी भर देता है.
तंदुरुस्ती के लिए लाइफ़बॉय याद रखिए...
लाइफ़बॉय
मैल में छिपे कीटाणुओं को
धो डालता है
LIFEBUOY
for health
LINTAS-L75-1712 HI
हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन.

फ़िनिट शक्ति!

हिन्दुस्तान पेट्रोलियम
हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड
(भारत सरकार का उद्यम)
सभी प्रमुख दुकानों में उपलब्ध
FINIT
CASHP-9-183 HIN

Campa
Campa
Campa
कैम्पा के संग संग
लेते मज़ा हम!
कैम्पा ऑरेंज फ्लेवर-
मौजमस्ती का स्वाद!
कृत्रिम स्वाद—इसमें फलों का रस या फलों का सार नहीं है।
OBM/5361

चन्दामामा

संस्थापकः चक्रपाणि संचालकः नागिरेड्डी

"गुरु और शिष्य" नाम शीर्षक कहानी में बड़े ही रोचक ढंग से यह समझाया गया है कि विद्या प्राप्त करने के लिए निश्चित आयु का कोई बन्धन नहीं है और साथ ही, विद्या का प्राप्त होना या न होना, शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति पर निर्भर करता है !

अमर वाणी

गुणिन्युपकृतिः स्वल्पा, गिरिवद्बहुमन्यते ।
गुणहीने तु गिरिवत्, कृतातु लघुतां व्रजेत् ॥

[गुणी व्यक्ति के प्रति किया गया उपकार बहुत थोड़ा होने पर भी पर्वत के समान बहुत मान्यता को प्राप्त होता है, लेकिन गुणहीन व्यक्ति के प्रति किया गया पर्वत-तुल्य उपकार भी राई की लघुता को प्राप्त करता है ।]

वर्षः ३७ मई, १९८५ अंकः ९

एक प्रतिः २.०० वार्षिक चन्दाः २४.००

इन्दिरा गांधी की प्रतिमा

अमेरिका में स्थापित लिबर्टी प्रतिमा की भांति बम्बई के समुद्र-तट पर इन्दिरा गांधी की एक विशाल प्रतिमा को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न चल रहा है। कुछ उद्योगपतियों ने इस योजना को कार्यान्वित करने का बीड़ा उठाया है।

पचासी वर्ष की आयु का जवान

उत्तर केन्या में मार्जिया किटोक्सटा नाम का एक पचासी वर्ष का बूढ़ा जब मवेशी चरा रहा था, तब एक बहुत भयानक जंगली भैंसे ने उस पर आक्रमण कर दिया। इस हमले से वह बूढ़ा ज़रा भी विचलित नहीं हुआ और उसने उसे सींग मरोड़ कर पकड़ लिया। उनके बीच एक घंटे तक लड़ाई चलती रही। आखिर वह भैंसा बड़ी मुश्किल से अपने सींग छुड़ाकर जंगल में भाग गया।

अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध प्रदर्शन शाला

भगवान बुद्ध के जन्मस्थान 'लुम्बिनी' में उनके जीवन तथा उपदेशों का परिचय देनेवाली एक महान प्रदर्शनशाला की स्थापना होने जा रही है। भारत और नेपाल की सीमा पर स्थापित होनेवाली इस प्रदर्शनशाला के निर्माण के लिए भारत तीन करोड़ रुपये की राशि दे रहा है।

क्या आप जानते हैं

१. चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में शोभा पानेवाले ग्रीक राजदूत का नाम क्या था ?
२. प्लासी का युद्ध कब और किनके बीच हुआ था ?
३. 'गेट वे ऑफ इंडिया' का निर्माण किसके सम्मान में हुआ था ?
४. महाराणा प्रताप के घोड़े का नाम क्या था ?
५. विश्व का सबसे प्राचीन प्रजातंत्र राष्ट्र कौनसा है ?

उत्तर पृष्ठ ६४ पर देखें
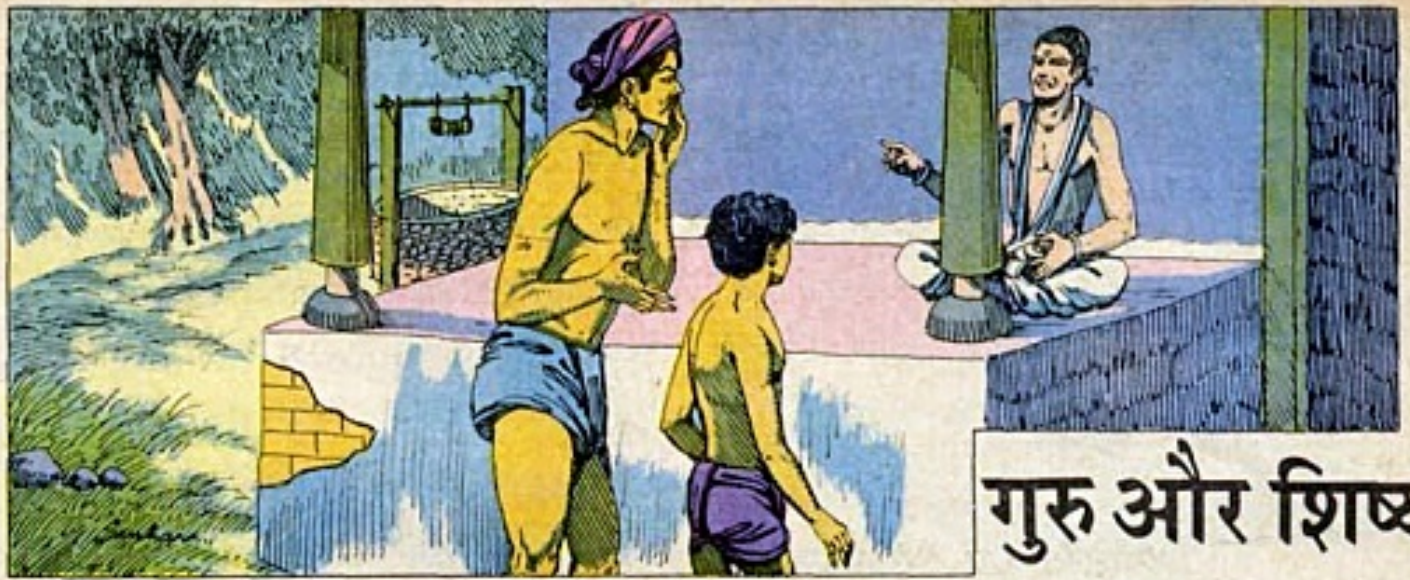
गुरु और शिष्य

गोरखदास का मन पढ़ाई में नहीं था, इसलिए उसका बाप बड़ा परेशान था। एक बार उस गाँव में एक नया अध्यापक आया। गोरख का बाप गोरख को उस अध्यापक के पास ले गया और बोला, "महानुभाव ! आपकी बड़ी कृपा होगी, अगर आप इस बालक को पढ़ा-लिखाकर योग्य बनादें।"

"मेरे साथ रहकर एक साल तक सेवा-कार्य करनेवाला शिष्य एक दिन विद्याध्ययन में भी सफल होगा। आप इस बालक को मेरे पास छोड़कर निश्चिन्त चले जाइए !" गुरु ने कहा।

गोरख का बाप उसे वहीं छोड़कर अपने घर लौट गया।

गुरु ने पहले दिन से ही गोरख को घर के कामकाज में लगा दिया। गोरख गुरु की चार दुधारू गायों को मैदान में चराने ले गया। पशुशाला की सफाई की। गोबर के उपले बनाये। घर के जूठे बर्तन साफ़ किये।

गोरख ने ये सारे काम बिना किसी आनाकानी के बड़ी निष्ठा से पूरे किये। पहला दिन समाप्त होने पर गुरु ने गोरख को बुलाकर पूछा, "तुम सारे दिन काम में लगे रहे। इन कामों में जो काम तुम्हें अच्छा न लगा हो, मुझे बताओ, उस काम के समय में मैं तुम्हें पढ़ाया करूँगा।"

गुरु ने यह उपाय इसलिए अपनाया था, ताकि गोरख पढ़ाई के प्रति खुल जाये और उसे काम की तुलना में आसान समझे। इसमें गोरख को इतना ही करना था कि वह एक कोने में बैठकर गुरु की बातें सुनें। पर यह उपाय कारगर न हुआ। गोरख ने साफ़ कह दिया, "गुरुजी, मुझे काम करना ही अच्छा लगता है। पढ़ने में मेरी रुचि नहीं है।"

गुरु ने सोचा कि चार-पांच दिन बीतने पर गोरख की बुद्धि राह पर आजायेगी, पर दस दिन

तुम हवा में उड़ सकते हो ! पानी पर चल सकते हो ! मैं तुम्हें ऐसे मंत्र बताऊंगा। लेकिन उनके लिए तुम्हें पहले वर्णमाला सीखनी होगी ।"

गोरख ने गुरु की बात मान ली। गुरु ने उसे अक्षरों का अभ्यास कराना शुरू किया। अक्षर सीखते समय उसका सारा ध्यान घर के कामों की तरफ लगा रहता। देर तक अभ्यास करने पर भी वह एक वर्ण नहीं सीख पाया ।

तब गुरु गोरख के पास पांच साल के एक बालक को लाकर बोला, "देखो ! यह बच्चा पांच साल का है, तुम दस साल के हो। इसे मैं अभी अक्षर सिखा देता हूं। तुम देखो, यह कितनी तेज़ी से सीखता है !"

वह बालक थोड़ी ही देर में कई अक्षर सीख गया। गोरख ने उस बालक को अच्छी तरह परखा और बोला, "अक्षर सीखने के लिए पांच साल की उम्र होनी चाहिए। मैं तो बड़ा हो गया हूं, इसलिए मैं सीख नहीं पाता ।"

गुरु ने शांत चित्त से कहा, "अक्षर-ज्ञान के लिए उम्र से कोई मतलब नहीं है। तुम किसी बड़ी उम्र के आदमी को ले आओ, मैं उसे अक्षर सिखा दूंगा ।"

गोरख अपने घर जाकर एक नौकर को ले आया। वह थोड़ी ही देर में अक्षर सीख गया।

"तुमने देखा न ! उम्र के साथ विद्याध्ययन का कोई सम्बन्ध नहीं है, बस पढ़ने में मन होना चाहिए ।" गुरु ने कहा ।

"नौकर बीस वर्ष का है, इसलिए पढ़ाई निकल गये, गोरख के अन्दर कोई परिवर्तन न आया ।

ग्यारहवें दिन गुरु ने गोरख को अपने पास बैठा कर समझाया, "सुनो बेटा ! गायें जो घास खाती हैं, वह घास ही दूध बन जाती है। इसका कारण इतना ही है कि गाय के शरीर की गठन में ऐसी विशेषता है । इसी प्रकार मनुष्य के अनुभव होते हैं, उन्हें शिक्षा ज्ञान के रूप में बदल देती है। मैं ये सारी बातें तुम्हें सुनाऊंगा। क्या सुनोगे ?"

'गुरु जी ! इन बातों को सुनने से मुझे खीज होती है।" गोरख ने फटाक से जवाब दिया।

इसके बाद चार दिन और बीत गये। पांचवें दिन गुरु ने गोरख को बुलाकर कहा, "बेटा।

सीख गया। मैं भी जब बीस साल का हो जाऊंगा, तब पढ़ूंगा!" गोरख ने जवाब दिया।

"अच्छा, तुम किसी अपनी उम्र के लड़के को बुला लाओ, मैं उसे पढ़ा देता हूं।" गुरु ने फिर आजमाया।

गोरख ने सारा गांव छान लिया, पर उसे दस साल का कोई अनपढ़ लड़का नहीं मिला। इस उम्र के सभी बालक पढ़ने जाते थे।

"देखो! ये सारे लड़के पढ़ने जाते हैं, इनके बीच तुम अकेले ही अनपढ़ निकलोगे, तो तुम्हारा कोई मान नहीं करेगा। इसलिए अब भी समय है, मन लगाकर पढ़ लो!" गुरु ने फिर समझाया।

"मैं मान-अपमान की जरा भी परवाह नहीं करता। यह तो अपनी-अपनी क़िस्मत की बात है। लोग आपकी भी खिल्ली उड़ाते हैं और आपस में यह कह कर हंसते हैं कि आप बहुत ही नाटे हैं। अगर आप इस बात पर अपमान का अनुभव करें, तो भी क्या कर सकते हैं? आप लंबे नहीं हो सकते और मैं पढ़ नहीं सकता! बस इतनी सी बात है!" गोरख ने फिर गुरु की बात काट दी।

इस पर गुरु ने कठोर होकर कहा, "अगर तुम नहीं पढ़ोगे तो तुम्हें रोज़ दस कोड़े खाने पड़ेंगे।"

गोरख डर गया। वह देर तक तख्ती लिये बैठा रहता, पर फिर भी एक अक्षर का ज्ञान उसे नहीं हुआ।

एक दिन गुरु ने गुस्से में भरकर कहा, "तुम्हें प्रतिदिन दस अक्षर सीखने हैं। दस में से जितने भी अक्षर कम होंगे, उतने ही कोड़े तुम्हें खाने पड़ेंगे।"

"यह तो बड़ा अन्याय है!" गोरख ने कहा।

"कैसे?" गुरु ने क्रोध में भरकर पूछा।

"पढ़ना मेरी जिम्मेदारी है! इस जिम्मेदारी में कोई भूल हो जाती है, तो उसका दोष मेरा है। उसका दंड मुझे भोगना पड़ता है। इसीतरह पढ़ाना आपकी जिम्मेदारी है। अगर मैं कुछ सीख नहीं पाता हूं तो इसका मतलब है कि आप ठीक से सिखा नहीं पा रहे हैं। यह दोष आपका है। मेरे दोष पर आप मुझे कोड़े लगाने

की धमकी दे रहे हैं। पर आपके दोष पर कौन आपको दंड देगा ?" गोरख ने उलटा सवाल किया ।

"बेटा ! तुमने मेरी आंखें खोल दीं, पर तुम अपनी त्रुटियों को न समझ पाओगे । अगर समझ भी गये, तो उन्हें सुधार न पाओगे । इसलिए तुम्हें विद्या प्राप्त नहीं होगी । पर याद रखो, मुझे अपनी त्रुटि मालूम होगयी तो मैं उसे सुधार लूंगा । तुम्हें मैं पढ़ा नहीं सकता । तुम खुशी से घर लौट जाओ ।" गुरु ने अपना निर्णय दे दिया ।

"पर, मेरे पिताजी ने एक साल तक घर न लौटने का आदेश दिया है !" गोरख ने सकुचाते हुए कहा ।

"तुम अपने पिता से कह देना कि एक साल के अन्दर ही गुरु को उसकी त्रुटि बताकर आये हो । जाओ ! अब फिर कभी मेरे सामने न आना ।" गुरु खीजकर बोला ।

गोरख अपने घर चला गया । गोरख को देखकर पिता परेशान हो उठा और घबरा कर गुरु के पास पहुंचा । गुरु ने उसे समझाया, "तुम्हारा बेटा पढ़ाई के अलावा ऐसा कोई काम नहीं, जो सीख और कर नहीं सके । अब तुम मुझे परेशान मत करो ।" यह कहकर गुरु ने उसे वापस भेज दिया ।

गोरख पढ़ाई में कच्चा निकला, पर खेती-बाड़ी में खूब सफल हुआ । अब उसे शिक्षा की आवश्यकता का भी अनुभव हुआ । वह फिर गुरु के आश्रय में गया । पहले तो गुरु हिचका, लेकिन उसने गोरख में परिवर्तन लक्ष्य कर उसे पढ़ाना-लिखाना प्रारम्भ कर दिया । गोरख जल्दी ही सब सीख गया ।

गोरख ने ज़रा गर्व से कहा, "मेरी बात सच निकली न ! पढ़ाई या तो पांच साल की उम्र में होती है या बीस साल की उम्र में । अब मैं बीस साल का हूं और लिखना-पढ़ना सीख सका हूं ।"

"ओह, ऐसी बात है ! तब तो यह साबित हो गया कि तुम्हारे न पढ़ पाने का दोष मेरा नहीं है !" गुरु ने संतुष्ट होकर कहा ।
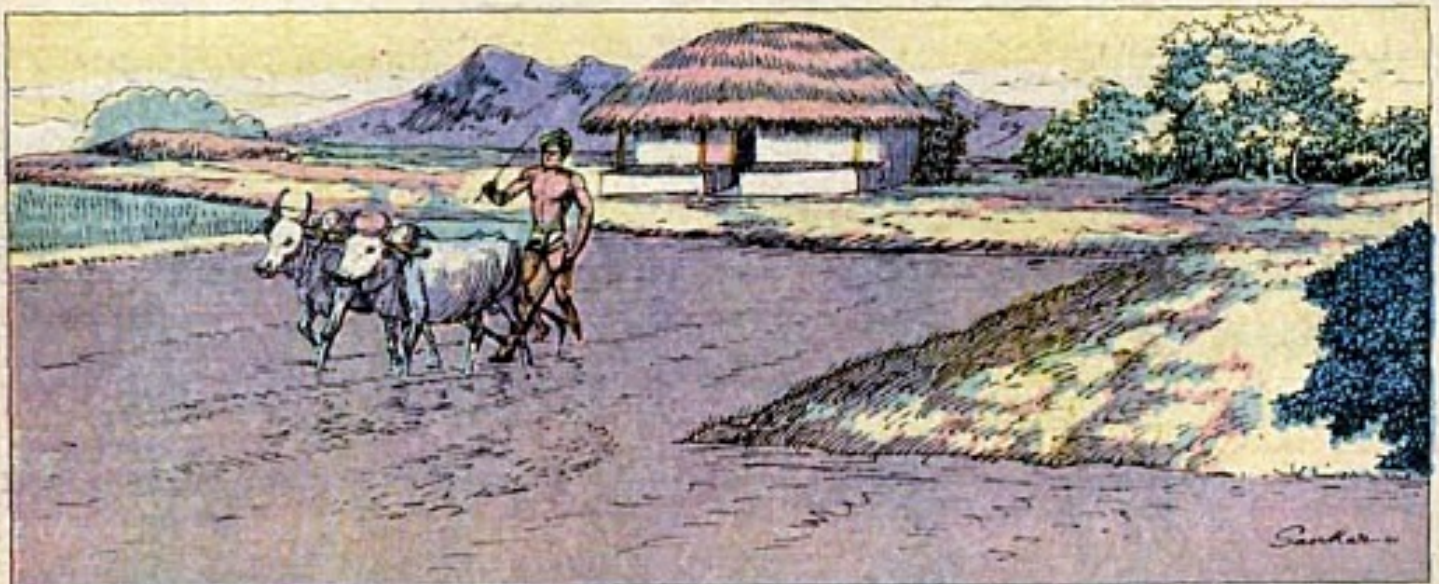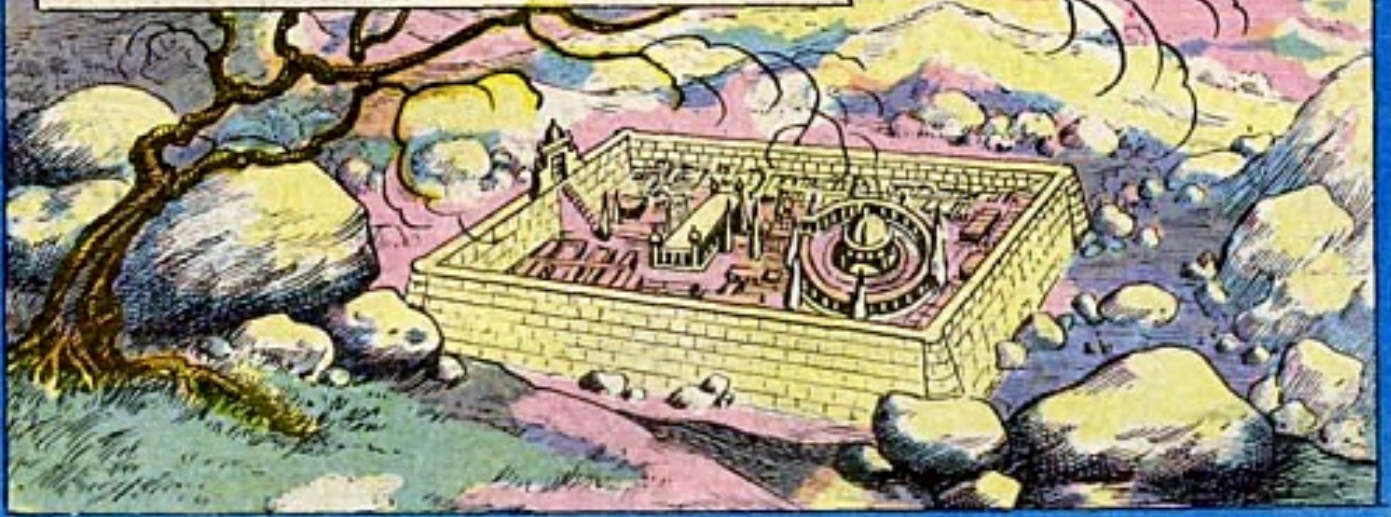
[सर्पकेतु कुछ अतिरिक्त सेना के साथ नगर में पहुँचा, जिससे चंद्रवर्मा का व्यूह विफल हो गया। तब चंद्रवर्मा और उसका सखा सुबाहु दोनों दो घोड़ों पर सवार होकर नगर-सीमा से बाहर पहाड़ों की ओर भाग गये। शत्रु ने उनका पीछा किया और उन्हें घेर लिया। लाचार होकर चंद्रवर्मा और सुबाहु पहाड़ी तल में बहने वाली एक बड़ी नदी में कूद पड़े। आगे पढ़िये...]

चंद्रवर्मा ने नदी में तैरने का प्रयत्न किया, पर वह तैरने के बजाय उसकी तेज़ धारा में बहने लगा। पहाड़ी तल पर शत्रु-सैनिकों का शोर और ऊँची बातचीत उसके कानों में पड़ रही थी, लेकिन उसे इस बात का पता न लग सका कि सुबाहु नदी में उसके साथ कूद पड़ा है या शत्रु के बीच फँस गया है।

इन्हीं सब बातों को सोचते हुए चंद्रवर्मा बड़ी तेज़ी से नदी की धारा में बहता जा रहा था। उसने तैरने की बड़ी कोशिश की, लेकिन उसे सफलता नहीं मिल सकी। थकावट के कारण वह धीरे-धीरे अपना होश खोता जा रहा था। उसने डूबने से बचने के लिए आखिरी बार जोर मारा, पर उस पर शिथिलता का कब्ज़ा हो चुका था। शरीर पर उसका क़ाबू न था। हर अंग अपनी शक्ति खो चुका था। मौत को निश्चित जान उसने बचने की आशा छोड़ दी और अपनी आँखें बन्द कर लीं।

चंद्रवर्मा को जब होश आया तो उसने देखा कि सूरज ठीक माथे के ऊपर है और वह कंटीली झाड़ियों से भरे हुए भयंकर जंगल के बीच पड़ा है। दिमाग पर थोड़ा और ज़ोर डालने से उसे स्पष्ट हो गया कि वह किसी तालाब के किनारे पर है। वह समझ गया कि भाग्यवश वह नदी में डूबा नहीं, बल्कि उसकी तेज़ धारा ने उसे अपनी किसी उपनदी के प्रवाह में फेंक दिया और वह उसमें बहता हुआ यहां आ पहुँचा है। दूसरे ही क्षण उसे सुबाहु का ध्यान आया। वह चौंक कर उठ बैठा और आँखें फाड़ फाड़कर सुबाहु को खोजने लगा, पर उसका कहीं कोई निशान नहीं था।

चारों तरफ सांय-सांय की आवाज़ थी और सारा इलाका एक भयावह गूंज से भरा हुआ था अब चंद्रवर्मा को भोजन की याद आयी। वह धीरे से चलकर निकट के वृक्षों के पास पहुँचा। उनमें से कुछ पेड़ तो फलों के बोझ से धरती चूम रहे थे। चंद्रवर्मा बहुत भूखा था, वह फलों को तोड़-तोड़ कर खाता चला गया। उस वक्त उसे इस बात का भान भी न रहा कि वह एक अत्यन्त भयंकर जंगल के बीच एक दम अकेला है।

भूख शान्त हुई तो चंद्रवर्मा अपनी हालत पर विचार करने लगा। यह क़िस्मत की ही बात थी कि वह शत्रु के हाथ पड़ने से बच गया है। लेकिन इस समय वह जिस जंगल के बीच खड़ा है, वह काफ़ी भयानक जान पड़ता है। पता नहीं, इसमें मनुष्यों का निवास भी है या नहीं! या यह केवल खूँख्वार जानवरों तथा भूत-प्रेतों का अड्डा है। चंद्रवर्मा को कोई सूत्र नहीं मिल रहा था। वह सोचता हुआ जंगल के अन्दर चलता गया। उसके सोच का कोई तारतम्य नहीं था। ऐसा लगता था कि सारी घटनाएँ टूट-टूट कर उसके सामने आरही हैं। अभी वह पेड़ों के नीचे कुछ दूर ही चला था कि जंगल के सारे पेड़ भयानक गति से हिलने लगे, मानो वे किसी ज़बर्दस्त तूफान के नीचे आगये हों। साथ हा, रोंगटे खड़ा करने वाली चीखों-चिल्लाहटों और सीटियों की आवाज़ से वह जंगल गूंज उठा।

ये आवाज़ें सुनकर चंद्रवर्मा जड़वत् रह गया। वृक्षों की शाखाएं उसकी तरफ़ झुककर कर्कश स्वर करने लगीं। वह जिधर भी मुड़ता, वृक्षों की शाखाएं आगे झुक उसे बन्दी बनाने का प्रयत्न करतीं। वह समझ गया कि वह किसी जादूवाले जंगल में आ गया है।

एक विपदा से छुटकारा मिला तो दूसरी मुसीबत सामने थी। एक दम अकेला। मित्र के नाम पर बस एक तलवार उसके पास थी। अब इस संकट से कैसे बाहर निकले, उसके सामने यही एक सवाल था। उसने म्यान से अपनी तलवार खींच ली और अपनी तरफ़ भयंकर ध्वनि से झुक रही वृक्ष की एक शाखा को काट डाला। एक भयंकर चीख से जंगल कांप उठा। चारों तरफ़ ऐसी आग पैदा होगयी, मानो अग्नि पर्वत के शोले बरस रहे हों। बड़ी तीव्र फूत्कार सुनाई देने लगी।

चंद्रवर्मा सिर से पैर तक काँप उठा। जिस तरह के संकट की उसने कल्पना भी नहीं की थी, अब उसी का सामना करना था। पर उसने साहस बटोरा और तलवार को अपनी मुट्ठी में कसकर पकड़ लिया। जिधर से फूत्कार की आवाज़ आयी थी और विषैली गर्म हवा से जंगल भर उठा था, वह उसी दिशा की ओर मुड़ गया। चंद्रवर्मा ने देखा, तीन फण वाला एक भयंकर नाग पेड़ों के नीचे सर-सर दौड़ता हुआ उसकी तरफ़ बढ़ रहा है। उसकी जीभें बाहर निकली हुई हैं और उनसे फूत्कार करता हुआ वह उसके समीप आ रहा है। चंद्रवर्मा ने मन में सोचा, हर वार के साथ इसका एक फण कट

कर गिर जायेगा और कसकर तलवार उठायी। तभी जंगल के भीतर से विकृत कंठस्वर में ये स्नेहपूर्ण शब्द सुनाई दिये !

"बेटा कालनाग ! तुम इस मानव का घात न करो। अपनी विपदा के समय में यह रास्ता भटक कर हमारे यहां पहुँच गया है, इसलिए यह हमारे अतिथि के समान है। इसे तुम कुशलतापूर्वक मेरे पास ले आओ !"

ये शब्द सुनकर तीन फणोंवाला वह नाग चंद्रवर्मा से कुछ दूर हट कर रुक गया। जंगल के सारे वृक्ष भी शान्त हो गये। चीख-चिल्लाहटें और सीटियों की आवाज़ें बन्द होगयीं। हवा भी मानो रुक गयी। चंद्रवर्मा ने विस्मयपूर्वक कालनाग की तरफ़ देखा।

कालनाग ने चंद्रवर्मा की ओर अपने तीनों सिरों को हिलाकर संकेत दिया, जिसका आशय था कि तुम निःशंक मेरा अनुसरण करो। इसके बाद वह जंगल की तरफ़ चल पड़ा। चंद्रवर्मा के पास उसके पीछे जाने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था। ऐसा लगता था, मानो जंगल के उस सारे प्रदेश पर किसी की मंत्रशक्ति का कब्जा हो। यह स्वर उसी जादूगर का है। चंद्रवर्मा को नाग का अनुसरण करना ही होगा। भागने की कोशिश करेगा तो उसे अपनी जान से भी हाथ धोना पड़ेगा। इतना ही नहीं, भाग कर जायेगा भी कहाँ ? बाहर सब जगह वह खतरों से घिरा है।

चंद्रवर्मा ने तलवार को मुट्ठी में कसकर पकड़ लिया और कालनाग का अनुसरण करने लगा।

थोड़ी दूर जाने पर चंद्रवर्मा ने वृक्षों के बीच एक विकृत प्राणी देखा। उसका सिर और पंख बाज के थे तथा धड़ सिंह का था। नाग उसके सामने जाकर रुक गया। उसने अपने तीनों सिरों को झुकाकर फूत्कार ध्वनि की। दूसरे ही क्षण वह विकृत प्राणी बीच से चिर कर दो टुकड़ों में बंट गया और गिर गया। चंद्रवर्मा ने देखा, सामने एक जर्जर अवस्थावाला भवन है और उसके मुखद्वार पर सफ़ेद बालोंवाली, झुर्रियों से भरे शरीर की, झुकी हुई कमर वाली एक बुढ़िया खड़ी है।

इस दृश्य को देखकर चंद्रवर्मा के मुख से कोई आवाज़ नहीं निकली। उस स्त्री की रूपाकृति देखकर चंद्रवर्मा को शंका हुई, यह मानवी है या पिशाचिनी ? उस स्त्री ने अपने हाथ की लाठी को ज़मीन पर दो-तीन बार ठोका और प्यार से बोली, "कालनाग ! अब तुम जा सकते हो !"

फिर वह चंद्रवर्मा की ओर मुड़ी और बोली, "बेटा ! घर के अन्दर आजाओ। मैं कितने दिनों से तुम्हारा इन्तज़ार कर रही हूं।"

चंद्रवर्मा ने विस्मित होकर पूछा, "मेरा इन्तज़ार कर रही हो ?"

"हाँ बेटा ! तुम्हारा ही इन्तज़ार कर रही थी। तुम्हें मेरी बड़ी मदद करनी है, वैसे ही मुझे भी तुम्हारी बड़ी सहायता करनी है। तुम घबराओ नहीं, हम शत्रु नहीं हैं !" वह स्त्री बोली।

"तुम कैसे जानती हो कि मैं कौन हूं ? तुम्हारा नाम क्या है ?" यह कहकर चंद्रवर्मा उस स्त्री की तरफ़ बढ़ा।

"मेरा नाम कापालिनी है। मुझसे तुम्हारी कभी कोई हानि नहीं होनेवाली है, इसलिए तुम अपनी तलवार को म्यान में रख सकते हो। अगर मैं अपना विचार बदल कर तुम्हें नुक़सान पहुँचाना चाहूंगी तो यह तलवार तुम्हारे लिए ज़रा भी उपयोगी सिद्ध न होगी। तुमने जंगल में प्रवेश करते ही मेरी शक्ति का परिचय प्राप्त कर लिया है। मैंने बिना मुँह और बिना जीभवाले पेड़ों से आवाज़ें करवायी हैं। उन्हें तुमने चीखते-चिल्लाते और सीटी बजाते सुना है। उन्हीं पेड़ों ने तुम्हारे रास्ते को रोक डाला था।"

मदद करना चाहती हूं। लेकिन मेरी सहायता पाने के पहले तुम्हें मेरी एक मदद करनी होगी ।"

कापालिनी ने जब चंद्रवर्मा को उसका नाम लेकर सम्बोधित किया, तब उसके मन में इस मायाविनी स्त्री की शक्ति एवं सामर्थ्य के प्रति विश्वास जम गया। उसे ऐसा लगा कि इस जादूगरनी में सारी बातों को जान लेने की शक्ति है और यह इस बात को भी बता सकती है कि इस वक्त वीरपुर में क्या हो रहा है ? उसके सेनापति धीरमल्ल तथा मित्र सुबाहु का क्या हाल है ?

इन सब सोच-विचारों से घिरा हुआ चंद्रवर्मा निर्भय और निःशंक होकर कापालिनी के पास पहुँचा। कापालिनी उसे अत्यन्त आदर और स्नेह से अपने भवन में ले गयी। उस भवन की जर्जर दीवारों पर अनेक जानवरों के सिर तथा नर-कपाल लटक रहे थे। दीवार के एक बहुत बड़े आले में विचित्र ढंग से तैयार की गयी एक मेज़ पर काँच का एक गोला रखा हुआ था, जिसमें अजीब-सी चमक थी ।

कापालिनी ने चंद्रवर्मा को कांच के गोलक वाली मेज़ की बगल में रखे एक पलंग को दिखाकर कहा, "चंद्रवर्मा ! तुम इस पलंग पर बैठ जाओ। तुम नदी में डूबकर मरे नहीं और बचकर इधर निकल आये, इसे मैं अपनी खुशक़िस्मत मानती हूँ। मैं जो कार्य साधना चाहती हूँ, वह तुम्हारे द्वारा ही संभव है। और

कापालिनी बुढ़िया ने कहा ।

चंद्रवर्मा समझ गया कि इस समय अपनी शक्ति पर भरोसा करना मूर्खता होगी । उसने तलवार घुमाकर अपनी म्यान में रख ली और कहा, "कपालिनी ! मैं एक ऐसा भाग्यहीन व्यक्ति हूँ, जो अपने राज्य और मित्रों को खोकर इस जंगल में आ निकला है। विश्वास करो, मैं किसी भी तरह कभी तुम्हें हानि नहीं पहुँचाऊँगा क्या मैं तुमसे भी यही आशा रख सकता हूँ ?"

"मैं और तुम्हें हानि पहुँचाऊँगी ?" कापालिनी ने आश्चर्य और दुख के साथ चंद्रवर्मा की ओर देखा ।

वह बोली, "चंद्रवर्मा ! मैं यथाशक्ति तुम्हारी

कोई उसे नहीं कर सकता ।''

चंद्रवर्मा उस गोलक की बगल वाले पलंग पर बैठ गया और बोला, ''कापालिनी ! काँच का यह गोलक बड़ा ही विचित्र लगता है । इस तरह के गोलका की उपयोगिता के बारे में मैंने पहले से भी थोड़ा-बहुत सुन रखा है । क्या हम इसके अन्दर भूत, भविष्य और वर्तमान को देख सकते हैं ?''

चंद्रवर्मा का सवाल सुनकर कापालिनी ने गहरी साँस ली और कहा, ''बेटा चंद्रवर्मा ! यह गोलक भूत और वर्तमान की घटनाओं को तो दरशा सकता है, लेकिन भविष्य की नहीं । अगर यह भविष्य में होनेवाली घटनाओं को भी दरशा सकता तो मेरे निराश होने का सवाल ही नहीं उठता था । इसी कारण मैं एक कठिन कार्य को साधने में तुम्हारी मदद चाहती हूँ । बोलो, मेरी मदद करोगे न ?''

''क्या उस कार्य को साधना सचमुच ही बहुत कठिन है ?'' चंद्रवर्मा ने पूछा ।

''हाँ, वह काम दुःसाध्य है, पर असाध्य नहीं । सुनो, मैं तुम्हें बताती हूँ । यहां से सौ योजन की दूरी पर शंखु नाम का एक मांत्रिक है। तुम्हें उसके घर में घुसकर मेरे लिए एक वस्तु चुराकर लानी होगी । उस वस्तु के प्राप्त होने पर मैं और एक हज़ार वर्ष तक पूर्ण यौवन, स्वास्थ्य और सुख के साथ जी सकती हूँ, वरना... ।''

कापालिनी अपनी बात अधूरी छोड़कर कलप-कलप कर रोने लगी । उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गयी । उस समय वीभत्स-सी दिखने वाली इस स्त्री के प्रति चंद्रवर्मा के मन में अपार सहानुभूति पैदा हुई । पहले चंद्रवर्मा के मन में जो थोड़ा-बहुत सन्देह था कि यह जादूगरनी धोखा देकर उसका ख़ात्मा कर सकती है, या उसे अन्य किसी तरह का नुक़सान पहुँचा सकती है, वह उसके दुख को देखकर गायब होगया ।
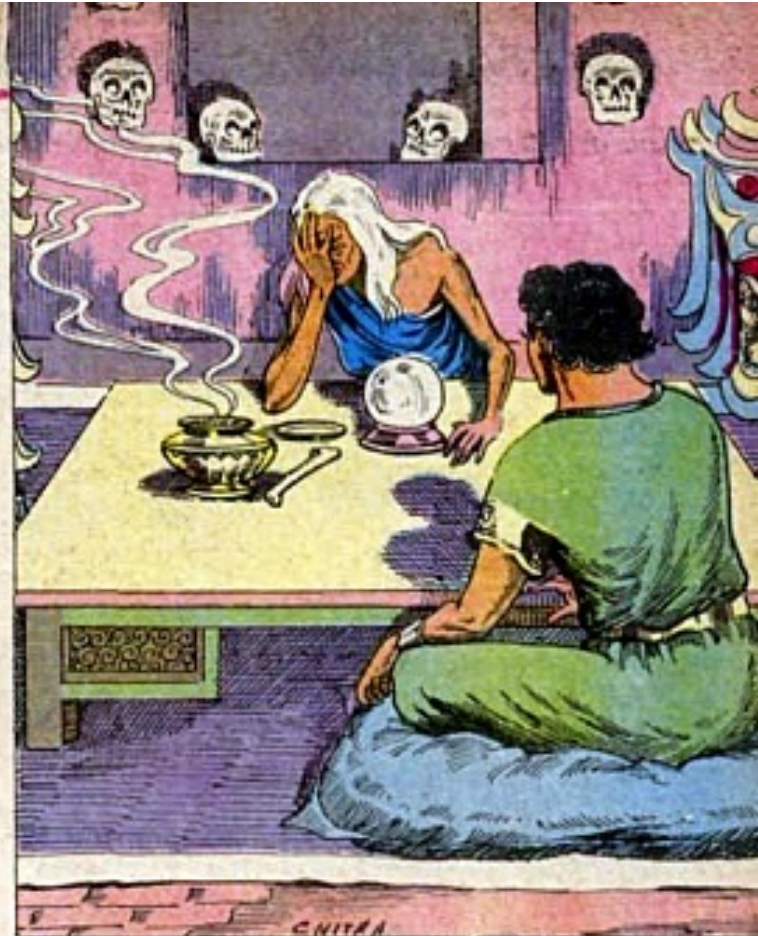
''कापालिनी ! मैं अपनी ताक़तभर तुम्हारी सहायता करूँगा ! लेकिन इसके पहले तुम्हें मेरी छोटी-सी मदद करनी है । क्या तुम इस काँच के गोलक में यह देखकर बता सकती हो कि इस वक्त मेरे वीरपुर नगर में क्या हो रहा है ? मेरे सेनापति धीरमल्ल का क्या हुआ ? तथा मेरे

साथी सुबाहु का क्या हाल है ?" चंद्रवर्मा ने पूछा ।

कापालिनी मुस्कुरा कर उठ खड़ी हुई । दीवार पर लटक रही आदमी की लम्बी हड्डी को लेकर काँच के गोलक के निकट पहुँची । किसी मंत्र का उच्चारण करके उसका स्पर्श किया और चंद्रवर्मा से बोली, "देखो ! यही तुम्हारा वीरपुर नगर है !"

नगर धू-धू कर जल रहा था । आसमान में धुआँ उठ रहा था।राजपथ पर हाहाकार करते असंख्य नागरिक बेतहाशा भाग रहे थे । चारों तरफ़ तबाही मची हुई थी । किसी को कोई शरण नहीं मिल रही थी । उस दृश्य को देखकर चंद्रवर्मा विकल हो चीख पड़ा । उसने अपनी आँखें बंद कर लीं और कापालिनी से कहा, "बन्द कर दो इसे ! मैं यह सब अपनी आँखों से नहीं देख सकता ।"

कापालिनी ने उस मानव-हड्डी को फिर काँच के गोलक से छुआ दिया । दूसरे ही क्षण सारा दृश्य गायब होगया । कापालिनी ने पुनः उस हड्डी को काँच के गोलक से छुआया और चंद्रवर्मा से कहा, "लो, देखो, यह है तुम्हारा सेनापति धीरमल्ल !"

चंद्रवर्मा ने आँखें खोलकर बड़ी आतुरता से गोलक की तरफ़ निगाह डाली । सामने पहाड़ी टीले, घाटियाँ और ऊँचे पहाड़ नज़र आये ।... सेनापति धीरमल्ल अपने घुड़सवारों के साथ बड़ी तीव्र गति से दौड़ा जा रहा था । सर्पकेतु के सैनिक उसे चारों तरफ़ से घेरते हुए उसके पास पहुँच रहे थे । धीरमल्ल ने अपने घोड़े को रोका, अपने अनुचरों को कोई आदेश दिया, फिर तलवार खींच कर अपने घोड़े सहित शत्रु के ऊपर टूट पड़ा ।

"यह घटना आज सुबह हुई है । इसके बाद धीरमल्ल का क्या हुआ, यह देखना उचित नहीं है ।" इतना कह कर कापालिनी ने अपने हाथ की हड्डी से काँच के गोलक का स्पर्श किया । तत्काल वह दृश्य ओझल होगया ।

चंद्रवर्मा चकित भाव से उस काँच के गोलक को ताकता रह गया ।

दूरदर्शी राजा

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये। पेड़ पर से शव उतारा और उसे कंधे पर डालकर हमेशा की तरह श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में वास करनेवाले बेताल ने पूछा, "राजन् ! आप किसी कामना से प्रेरित होकर इस अर्धरात्रि के समय नाना प्रकार की यातनाएं झेल रहे हैं। लेकिन इस बात का कोई भरोसा नहीं है कि इस कामना के पूर्ण होने के बाद आप सचमुच सन्तुष्ट हो जायेंगे। इसके उदाहरण के लिए मैं आपको शान्तन वर्मा नाम के एक राजा की कहानी सुनाऊँगा। श्रम को भुलाने के लिए सुनिये !"

बेताल कहानी सुनाने लगा:

कुन्तल देश के राजा शान्तन वर्मा बड़े धर्मात्मा थे। उनका राज्य निरापद था और दूर-दूर के गांवों में बसनेवाली प्रजा के लिए भी शत्रु तथा चोर-डाकुओं का भय नहीं था। लेकिन जनता को प्रकृति के प्रकोपों के कारण

बेताल कथा

होनेवाली विपदाओं का सामना जब-तब अवश्य करना पड़ता था। कभी अधिक वर्षा के कारण फसल नष्ट हो जाती थी, तो कभी अकाल के कारण जनता को तकलीफ़ें झेलनी पड़ती थीं। ऐसे अवसरों पर राजा शान्तन वर्मा स्वयं उन प्रदेशों में जाते और पीड़ित प्रजा को उचित मदद पहुंचाते थे।

वर्षा ऋतु का काल था। कुन्तल देश में बहनेवाली बलभद्र नदी में पानी उफानें लेने लगा और राज्य के कई भूभाग बाढ़ में जलमग्न होगये। शान्तनवर्मा कुछ राजकर्मचारियों और अधिकारियों को साथ लेकर वहाँ पहुँचे और भोजन तथा आवास से वंचित लोगों के लिए सारी व्यवस्था की।

राजा जब राजधानी को लौट रहे थे तो मार्ग में एक वन पड़ा। वहाँ उन्हें किसी मुनि का आश्रम दिखाई दिया। पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि वह ज्ञानश्रय नाम के मुनि का आश्रम है। मुनि अनेक योगविद्याओं के ज्ञाता और तपोशक्ति के धनी हैं।

शान्तनवर्मा ने मुनि के दर्शन किये। मुनि ने भी राजा की अभ्यर्थना की और उनका आतिथ्य-सत्कार कर कहा, "राजन्! आप धर्मात्मा हैं और प्रजा के सुख-दुख को अपना मानकर सदा उसका सन्तान के सदृश पालन करते हैं। प्रजाधर्म निभानेवाले ऐसे राजा बहुत कम होते हैं। आप मुझसे मिलने आये हैं। अगर आपकी कोई मनोकामना हो तो मुझसे कहिये!"

राजा ने सविनय कहा, "महात्मन्! मैंने

जनता के कल्याण के लिए अनेक कार्यक्रम शुरू किये हैं, लेकिन मैं जिस गति से उन्हें पूरा करना चाहता हूँ, वे पूरे नहीं हो पाते। आंधी-वर्षा, बाढ़-सूखा—इन प्राकृतिक प्रकोपों को रोकने की सामर्थ्य हममें नहीं है, लेकिन इनके द्वारा जनता का बहुत अधिक नुक़सान न हो, रक्षित रहे, ऐसी व्यवस्था का प्रयास हम कर सकते हैं। मेरे संकल्प और मेरे प्रयत्न को सफलता नहीं मिल रही है। आप, अगर संभव हो तो, मुझे कोई ऐसा उपाय बताने की कृपा कीजिये !"

ज्ञानाश्रय मुनि ने मंद हास्य किया और राजा से बोले, "आपकी इच्छा प्रशंसनीय है। लेकिन किसी कार्य का निर्देश करने से पहले उसके बारे में गहराई से सोचना आवश्यक होता है। तभी उसमें सफलता मिलती है। राजन् ! बताइये क्या आपके यहां अच्छी बड़ी संख्या में कुशल अधिकारी हैं ?"

"मुनिवर ! मुझे अपने राज्य के अधिकारियों की दक्षता और सामर्थ्य शक्ति में तनिक भी सन्देह नहीं है। वे शासन में मुझे उचित परामर्श देते हैं और शासन कार्यों में स्वयं कार्यशील होकर राज्य को पूरा सहयोग देते हैं। लेकिन इस समय जो मैं चाहता हूं, वह इतना ही है कि जनता के कल्याण के लिए किये जानेवाले कार्यों में गति आये और वे शीघ्रता से पूरे हो जायें।"

मुनि थोड़ी देर मौन रहे, फिर बोले, "राजन् ! मैं आपको अपूर्वशक्तियों वाला एक यंत्र भेंटस्वरूप देता हूँ। उस यंत्र को सिर पर

रखकर आप मन में जो भी संकल्प करेंगे, वह पूरा होगा और उसकी पूर्ति के लिए आवश्यक परामर्श और सूचना आपको प्राप्त हो जायेगी।" यह कहकर मुनि ने एक हाथीदांत की पेटी राजा के हाथ में रख दी।

राजा ने श्रद्धापूर्वक उसे स्वीकार किया। इसके बाद मुनि ने समझाया, "राजन्! इस यंत्र के बारे में आपसे एक विशेष बात कहनी है। मैंने अपनी अर्जित तपस्या का एक अंश त्याग कर इसका निर्माण किया है, इसलिए इसकी शक्ति मेरे जीवनकाल तक ही कायम रहेगी। इस समय मेरी आयु अस्सी वर्ष से भी अधिक है।

मैंने योगसाधना की है, इसलिए मैं पंद्रहवर्ष तक और जीवित रह सकता हूं। इस अवधि में आप निश्चिन्त होकर इसका उपयोग करें। मेरी मृत्यु के बाद यह एक साधारण दन्त-पेटिका मात्र रह जायेगी।"

शान्तनवर्मा कुछ देर सोचते रहे, फिर उस यंत्र को मुनि को लौटाकर बोले, "मुनिवर! आप मुझ पर अप्रसन्न न हों, और मुझे क्षमा कर दीजिए क्यों कि मैं इस यंत्र को स्वीकार नहीं कर सकता।"

मुनि ने विस्मित होकर पूछा, "राजन्! आप किस कारण से इस यंत्र को वापस कर रहे हैं! आप कम से कम पंद्रह वर्ष तक इसका उपयोग कर सकते हैं। इस अवधि में आप प्रजा के कल्याण के कितने ही कार्य सम्पन्न कर सकते हैं न!"

"मुनिवर! आप मुझे क्षमा कीजिएगा। इस यंत्र से तात्कालिक लाभ ही संभव है। भविष्य में फिर समस्याएं उठेंगी, मुझे उन पर भी विचार करना है। इसीकारण मैं इस अस्थायी लाभ वाले यंत्र को लेने से इनकार कर रहा हूं।" राजा ने निवेदन किया।

मुनि ने मन्दहास किया और आशीर्वाद देकर राजा शान्तनवर्मा को विदा किया।

बेताल ने कहानी सुनाकर विक्रमार्क से कहा, "राजन्! मुझे तो शान्तन वर्मा बड़े असन्तोषी और मूढ़ स्वभाव के मालूम होते हैं। उनकी मनोकामना जानकर मुनि ने अपनी अर्जित तपस्या की शक्ति के अंश से निर्मित वह

यंत्र भेंट किया और उन्होंने असन्तुष्ट भाव से उसे लौटा दिया ।

इतना ही नहीं, भविष्य में होनेवाली समस्याओं का उल्लेख करके अपने मूढ़मति होने का प्रमाण भी दे दिया । इस तरह उन्हें जनता के कल्याण का जो अवसर प्राप्त हुआ, उससे वे वंचित रह गये । क्या इसका कारण उनका असन्तोष और मूढ़त्व ही नहीं है ? इस सन्देह का समाधान अगर आप जानकर भी न देंगे तो आपका सिर फट कर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा ।''

अब विक्रमार्क ने बेताल को उत्तर दिया, ''शान्तन वर्मा ने मुनि के द्वारा प्राप्त यंत्र को लौटाकर अपने विवेक और अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है । उस समय वे कुछ कमियों के बावजूद स्वयं अपने सोचविचार से और राजकर्मचारियों के परामर्श तथा सहयोग से कुशलतापूर्वक राज्य का कार्यभार संभाल रहे थे । अगर वे मुनि से प्राप्त यंत्र का उपयोग करने लग जाते तो उन्हें और उनके राज्य-अधिकारियों को कुछ सोचने-विचारने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती । सबकी विचार शक्ति कुंठित हो जाती ।

पंद्रह साल यों ही यंत्र के सहारे बीत जाते । फिर वह यंत्र भी अपनी शक्ति खो देता, तब उन्हें कल्याण के सभी कार्य न केवल पहले की तरह करने पड़ते, बल्कि सोचने-विचारने की क्षमता को भी पुनः अर्जित करना पड़ता । विचारशीलता के कारण मनुष्य अन्य प्राणियों की अपेक्षा महान माना जाता है । अपनी उस शक्ति को किसी प्रलोभन के लिए त्यागना उचित नहीं । मंत्रों-यंत्रों से सिद्ध होने वाले प्रयोजन तात्कालिक और अस्थायी ही होते हैं, इस सत्य को समझनेवाले शान्तनवर्मा कभी सन्तोष गुण से रहित अथति अधिक के प्रति लोभ रखनेवाले और मूढ़मति नहीं हो सकते । वे मेरी दृष्टि में अत्यन्त उदार, विवेकी और दूरदर्शी राजा हैं ।''

राजा के इसप्रकार मौन होते ही बेताल शव के साथ गायब होकर पुनः पेड़ पर जा बैठा ।

(कल्पित)
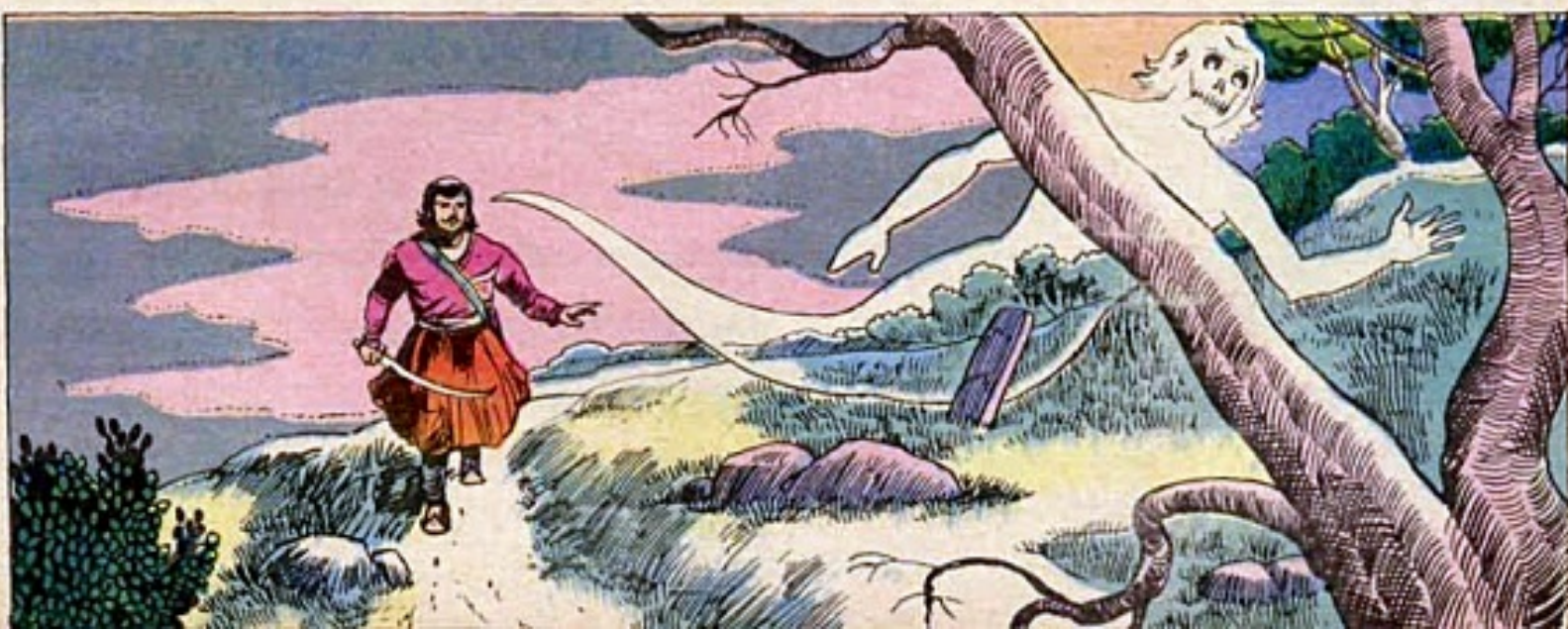
लकड़हारा और ब्राह्मण

एक जंगल से लगा हुआ एक गांव था। उसमें एक गरीब ब्राह्मण रहता था। उसके घर की बगल में ही एक गरीब लकड़हारा भी रहता था।
उस की आमदनी इतनी कम थी, कि वह उससे अपने परिवार का खर्च संभाल नहीं पाता था। वह हमेशा स्तित रहा करता था।

अचानक लकड़हारे का जीवन एक दम ही बदल गया। उसने अपनी पुरानी झोंपड़ी छोड़ दी और एक सुन्दर पक्का मकान बनवा लिया। उसकी वेशभूषा भी बदल गयी। अब वह, उसकी स्त्री और बच्चे बढ़िया महीन वस्त्र पहनने लगे।

लकड़हारे की इस बदली हुई स्थिति को देखकर ब्राह्मण को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसकी औरत ने उससे कहा, "इस लकड़हारे के जीवन में अचानक यह जो परिवर्तन आया है, उसका कारण पता लगाकर मैं तुम्हें बताऊँगी।"

थोड़े दिन बाद ब्राह्मणी ने अपने पति से कहा, "मैंने इनके धनी होने के कारण का पता लगा लिया है। लकड़हारे की पत्नी ने मुझे वह रहस्य बता दिया है।"

ब्राह्मण के पूछने पर ब्राह्मणी ने सारी कथा सुनादीः

कुछ दिन पहले मूसलाधार बारिश हुई। कई दिन तक सूरज के दर्शन नहीं हुए। लकड़हारा जंगल में लकड़ी काटने भी नहीं जा सका। उसके पास घर में जो भी जमा-बचत थी, वह भी खर्च हो गयी।

दो दिन ऐसे आये कि सबको उपवास करना पड़ा।

एक रात लकड़हारे के दिमाग में अचानक एक विचार आया। वह झटपट उठा और कुल्हाड़ी लेकर उसी अंधेरे में बाहर निकल गया। गांव के पासवाली नदी के किनारे एक मंदिर था। मंदिर में जो देवमूर्ति स्थापित थी, वह

काष्ठ की बनी हुई थी। लकड़हारे ने सोचा, क्यों न इस मूर्ति को काटकर इसकी लकड़ी को ईंधन के लिए बेच दिया जाये !

मंदिर के अन्दर पहुँच कर लकड़हारे ने ज्यों ही कुल्हाड़ी ठठायी, काष्ठ की मूर्ति के अन्दर से अचानक यह शब्द सुनाई दिया, "तुम रुक जाओ ।"

लकड़हारा अपनी कुल्हाड़ी को उसी तरह ऊँची किये हुए बुत की तरह खड़ा रहा। काष्ठ की मूर्ति के भीतर से ये शब्द गूँज उठे, "तुम सिर्फ़ धन चाहते हो न ! तुम हर सोमवार को सूरज निकलने से पहले इस नदी में डुबकी लगाओ, तभी तुम्हारे हाथ में सोने का एक सिक्का आ जाया करेगा ।"

जैसा मूर्ति ने कहा था, लकड़हारे ने वैसा ही किया। उसे हर सोमवार को सोने का एक सिक्का प्राप्त होता रहा ।

ब्राह्मणी ने अपनी कहानी पूरी की और ब्राह्मण को समझाते हुए कहा, "धनवान बनने के लिए इससे आसान तरीका और क्या हो सकता है ? तुम भी एक कुल्हाड़ी ले आओ और ऐसे ही एक रात मंदिर में जाकर उसे देवमूर्ति पर उठा दो । फिर क्या है हमें भी देवमूर्ति का आदेश मिलेगा, और हमें भी हर सप्ताह सोने का एक सिक्का प्राप्त होता रहेगा।"

ब्राह्मण को एकाएक यह सलाह पसन्द नहीं आयी। देवता की मूर्ति को तोड़ने के लिए उस पर कुल्हाड़ी उठाना घोर पाप है ।

पर जब उसने कुछ और गहराई से सोचा तो उसे लगा कि गरीबी से मुक्त होने का यह सबसे सरल उपाय है और उसे डरना नहीं चाहिए ।

ब्राह्मण उसी रात कुल्हाड़ी लेकर मंदिर में गया। उसका मन पापकर्म करने के संकोच से भरा हुआ था। उस की अंतरात्मा उसे सचेत कर रही थी कि उसे ऐस पाप कर्म नहीं करना चाहिए ऐसी ही हालत में उसने देवमूर्ति को खंडित करने के लिए कुल्हाड़ी उठायी । पर मूर्ति के अन्दर से कोई आवाज़ नहीं आयी। ब्राह्मण को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कुल्हाड़ी को और भी कसकर पकड़ लिया और मूर्ति पर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर फिर एक बार वार करने को वह उद्यत हुआ ।

इसी समय दीपक का प्रकाश मूर्ति पर पड़ा और देवता का मुखमंडल अत्यन्त ज्योतिर्मय होगया। उस मूर्ति के भीतर उसने भगवान के दर्शन किये। तब उस ब्राह्मण का रोम-रोम काँप उठा और वह मूर्छित होकर गिर पड़ा।

मूर्छावस्था में ही ब्रह्मण को मूर्ति के मुख से ये शब्द सुनाई दिये, "वत्स ! तुम देवता में भक्ति रखते हो, ऐसी स्थिति में क्या अपने पड़ोसी मूर्ख लकड़हारे की तरह व्यवहार करना तुम्हें शोभा देता है ? वह मूर्खतावश निश्चित ही मुझ पर कुल्हाड़ी चला देता, क्योंकि उसकी नज़र में मैं देवता नहीं, काष्ठ मात्र हूं। लेकिन तुम ऐसी मूर्खता क्यों करने आये ? तुमने यह कैसे सोचा कि एक मूर्ख के प्रति और एक भक्त के प्रति देवता का व्यवहार एक ही प्रकार का होगा ? अगर तुमने मुझ पर कुल्हाड़ी चलायी होती तो तुम बहुत बड़े पाप के भागी बनते, क्यों कि तुम्हें इस बात का ज्ञान है कि देवमूर्ति का क्या अर्थ होता है। लकड़हारे की बात तुमसे पूरी तरह भिन्न है। वह अपढ़ और अज्ञानी है। उसके अन्दर तुम्हारी तरह ज्ञान और विवेक नहीं है।"

जब ब्राह्मण की मूर्छा टूटी तो इन शब्दों का सार उसके मर्म तक लिखा हुआ था।

ब्राह्मण उठा उसने देव मूर्ति को भक्तिपूर्वक सर झुका कर प्रणाम किया और अपने घर लौट आया।

ब्रह्मणी ने पूछा, "मुझे सब बात बताओ, वहाँ क्या हुआ ?" पति के कुल्हाड़ी लेकर मन्दिर चले जाने के बाद ब्राह्मणी को अपनी सलाह पर बहुत पश्चाताप हो रहा था। क्यों कि अब उस का मन बदल चुका था।

ब्रह्मण ने कहा, "मैं अत्यन्त भाग्यशाली हूँ। मैंने भगवान के मुख से उनकी वाणी सुनी। देखो, हमें अपनी गरीबी पर दुखी नहीं होना चाहिए। हमें जो कुछ प्राप्त है, उसी को ईश्वर की इच्छा मान कर, हम उसी से सन्तुष्ट होकर जीने की आदत डाल लेंगे।"

ब्राह्मणी का मन हलका होगया। उसने स्वीकृति में सन्तोषपूर्वक अपना सिर हिलाया।

ग़लतफ़हमी

छिन्दवाड़ा गाँव में एक गृहस्थ रहता था, उसका नाम सोमशेखर था । सोमशेखर के एक ही बेटा था, नाम था जनार्दन । सोमशेखर तुनक मिजाज आदमी था । वह किसी न किसी बात पर अपने बेटे को डाँटता-डपटता रहता था । जनार्दन चुपचाप अपने पिता के कठोर वचनों को सुन लेता था, कभी मुँह खोलकर विरोध नहीं करता था ।

अब जनार्दन जवान होचुका था । लेकिन कोई भी गृहस्थ उसके साथ अपनी बेटी ब्याहने को तैयार नहीं था । पास के गाँव में सोमशेखर का एक मित्र दण्डपाणि रहता था । उसकी लड़की मीनाक्षी विवाह के योग्य हो चुकी थी, फिर भी दण्डपाणि ने जनार्दन के साथ अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव नहीं रखा ।

जनार्दन के बारे में केवल दण्डपाणि ही नहीं बल्कि और भी अनेक लोगों के मन में एक गलतफ़हमी थी । वे ऐसा सोचते थे कि जनार्दन भोला-भाला ही नहीं, बल्कि दब्बू स्वभाव का भी है । इसीलिए वह अपने पिता की डांट-डपट और फटकार सुनकर भी चुप रह जाता है ।

एक बार सोमशेखर ने जनार्दन को कुछ दूर के एक गाँव ताम्रपुर से आम खरीदकर लाने के लिए भेजा । जाने से पहले उसे हिदायत दी कि आम सस्ते हों, तभी लाना, वरना नहीं ।

जनार्दन पचास आमों की एक टोकरी खरीदकर उसी रात घर लौट आया । सोमशेखरर को जब मालूम हुआ कि जनार्दन ने पचास आम पचास रुपये देकर खरीदे हैं तो उसका पारा चढ़ गया । वह तमाका खाकर बोला, "अरे मूर्ख ! तेरे दिमाग में क्या सचमुच गोबर भरा है ? मैंने तुझे लाख बार समझाया था कि आम सस्ते हों तो लाना, वरना नहीं ! पचास आम पचास रुपये में लाकर तूने अपनी मूर्खता ही दिखाई है । इसीलिए कोई भी तेरे साथ अपनी बेटी ब्याहने को तैयार नहीं ।"

नरेंद्र वर्मा

जनार्दन दूर की यात्रा करके थक गया था। उसे पिता की बात सुनकर अच्छा न लगा, फिर भी उसने शांत स्वर में जवाब दिया, "बाबूजी ! किसी भी चीज़ का दाम हमारे और दूसरे गाँव में कम-ज्यादा हो, तभी तो हम उसे सस्ता-मंहगा बता सकते हैं। इधर हमारे गाँव में तो आम हैं ही नहीं। उधर ताम्रपुर में पचास आम का दाम पचहत्तर रुपये बोल रहे थे। मैंने मोलभाव करके पचास रुपये में सौदा कर लिया। पाँच रुपये राहखर्च में लग गये..." इसके आगे जनार्दन कुछ और कहने को हुआ...
पर सोमशेखर अपने बेटे की बातें सुनकर बुरी तरह खीज उठा। चिढ़कर बोला, "तुमसे ये सारे विवरण किसने पूछे ?"

"चाहे आप पूछें या न पूछें, पर मुझे तो बताना होगा न ! ताम्रपुर में ही रामनाथ सहाय से मेरी मुलाक़ात हुई थी। वे कह रहे थे कि आपसे उन्होंने बहुत दिन पहले कुछ कर्ज़ लिया था। वे हमारे परिवार की कुशलक्षेम पूछ रहे थे। उन्होंने कर्ज़े के वे चार सौ रुपये रख दिये। फिर कुछ रुक कर बोला, "बाबूजी ! आपसे मुझे कुछ कहना है। आपके मुँह से हर समय डांट-डपट सुनते रहने के कारण मेरा कोई आदर नहीं रह गया। यही कारण है कि कोई भी गृहस्थ मेरे साथ अपनी कन्या का विवाह करने को तैयार नहीं है।"

जनार्दन ने अभी अपनी बात पूरी ही की थी कि सोमशेखर का मित्र दण्डपाणि घर के भीतर से बाहर आया। उसे देखते ही जनार्दन को बड़ा संकोच हुआ। उसने पूछा, "मामाजी ! आप कब आये ?"

"अभी थोड़ी देर पहले ही ! तुम्हारे बाबूजी ने बताया था कि तुम ताम्रपुर गये हो, कब आना हुआ ?"' दण्डपाणि ने पूछा।

दण्डपाणि की बात से जनार्दन समझ गया कि उन्होंने उसकी और उसके पिता के बीच हुई बातचीत को सुना नहीं है। इसलिए वह थोड़ा आश्वस्त होकर बोला, "मामाजो ! मैं तो बस अभी-अभी पहुँचा हूं। आप अचानक आगये, क्या कोई खास बात है ?"

"हां, मैं तुम लोगों के कानों में अपनी बेटी मीनाक्षी की शादी का समाचार डालने आया था !" दण्डपाणि ने मुस्कुराते हुए कहा।

"क्या मीनाक्षी की शादी है ? कब ? किसके साथ ?" जनार्दन ने विस्मित होकर पूछा ।

"और किसके साथ ? तुम्हारे साथ ही !" दण्डपाणि ने उत्तर दिया ।

दोस्त के मुँह से यह जवाब सुनकर सोमशेखर ने कहा, "दण्डपाणि ! तुम्हें यहां आये काफी देर हो गयी, पर तुमने अपने मन का यह इरादा मुझ पर प्रकट नहीं किया और जनार्दन के आते ही यह बात बतायी । तुम्हीं कहो, यह कोई अच्छी बात है !"

जनार्दन के साथ मीनाक्षी की शादी की बात से सोमशेखर मन में प्रसन्न हो उठा था । उस रात सबने देर तक बात करते हुए खुशी-खुशी खाना खाया । अगले दिन सुबह दण्डपाणि अपने गांव लौट गया । घर पहुँच कर उसने पत्नी को बताया कि वह जनार्दन के साथ मीनाक्षी का रिश्ता पक्का कर आया है ।

दण्डपाणि की पत्नी को बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने थोड़ा झिझकते हुए कहा, "आपने घर से निकलते वक्त भी इस बात का संकेत नहीं दिया कि शादी का रिश्ता तय करने जा रहे हैं ! बेटी का रिश्ता किया भी तो ऐसे दब्बू के साथ ? आपको क्या मालूम नहीं है कि जनार्दन में दुनियादारी का ज्ञान बिलकुल नहीं है, साथ ही इतना दबैल भी है ?"

दण्डपाणि ने छिन्दवाड़ा की सारी घटना पत्नी को सुनादी, "जब जनार्दन आम खरीदकर घर लौटा तो उसे खबर न थी कि मैं अन्दर के कमरे में बैठा हूँ । मुझे अचानक सामने देखकर वह चौंक पड़ा था । उसे इस बात की झेंप थी कि मैंने पिता के साथ उसकी बातचीत को सुन लिया है । बात यह है कि जनार्दन बड़ा समझदार है । वह अपने पिता का हद से ज्यादा आदर करता है, लेकिन आज मैंने देख लिया कि गलत बात होने पर वह अपने पिता का विरोध भी कर सकता है ।"

पति की बात से मीनाक्षी की मां का समाधान हो गया । जनार्दन के बारे में फैली ग़लत फ़हमी दूर होगयी ।

नरभक्षी यक्ष

जिन दिनों काशी पर ब्रह्मदत्त का राज्य था, उस काल में बोधिसत्व ने एक वैश्य परिवार में जन्म लिया । बोधिसत्व के पिता मणि-माणिक आदि बहुमूल्य रत्नों का व्यापार करते थे । उन्होंने बोधिसत्व को सोलह वर्ष की अवस्था तक गुरुकुल में रखकर सब प्रकार की शिक्षा दिलायी ।

बोधिसत्व के गुरुकुल से घर लौटने पर पिता ने उनसे कहा, "बेटा ! मैं वृद्ध होता जा रहा हूँ। तुम मेरे इकलौते पुत्र हो । जो व्यापार मैंने अपने पुरखों से सीखा है, उसके गुर मैं तुम्हें भी बता देना चाहता हूँ । हमें तो अपने पुरखों के व्यवसाय को अपनाना चाहिए । इसे छोड़ कर तुम कोई दूसरा व्यवसाय अपनाना चाहोगे तो उसमें अनुभव हीनता के कारण तुम्हें नुकसान उठाना पड़ेगा । दूसरी बात, हमें अपने पुरखों के व्यवसाय को आगे बढ़ाने पर समाज में जो आदर प्राप्त होता है, वह दूसरे व्यवसाय करने पर शायद प्राप्त न हो ! इसलिए तुम मेरी बातों को ध्यान से सुन लो और उस मार्ग पर चलकर अपने और अपने पुरखों के यशको आगे बढ़ाओ !"

बोधिसत्व ने पिता की बात मान ली । एक सप्ताह बाद पिता और पुत्र मणि-माणिक रत्नों की गठरियाँ बाँधकर व्यापार के लिए परदेश चल पड़े ।

दोनों ने अेनक गाँवों और नगरों का दौरा किया और अपने रत्न फ़ायदे से बेचते हुए वे लोग प्रयाग पहुँचे । जब वे इस नगर में पहुँचे, उस समय सूर्यास्त हो चुका था । चारों तरफ़ घना अन्धेरा छाने लगा था ।

बोधिसत्व के पिता ने नगर के प्रवेशद्वार पर खड़े द्वारपाल के पास जाकर नगर में प्रवेश करने की अनुमति माँगी ।

"भद्रजनो ! आप देखने में धनी व्यापारी मालूम देते हैं, लेकिन मैं राजा के आदेश को

तोड़ नहीं सकता। उनका आदेश है कि सूर्यास्त से लेकर सूर्योदय तक नगर का द्वार खोलना नहीं चाहिए। मैं एक राज कर्मचारी हूँ। राजाके आदेश का पालन करना कर्तव्य है। इसलिए आप अन्यथा न समझ लीजिए। मेरी विवशता को देखते हुए मुझे क्षमा कर दीजिए।'' द्वारपाल ने कहा।

पिता-पुत्र के सामने यह समस्या पैदा हो गयी कि ऐसी हालत में क्या किया जाये! बोधिसत्व के पिता ने कहा, ''बेटा! अब रात का भोजन हमें कहाँ मिलेगा? अगर नगर में प्रवेश मिल जाता तो किसी सराय में भोजन का प्रबन्ध हो सकता था। अब हमें कहीं जगह मिलने की संभावना नहीं है। हमें भूखा रह कर रात काटनी पड़ेगी!''

द्वारपाल उनकी बातें सुन रहा था। उसे उन पर दया आगयी। उसने कहा, ''भद्रपुरुषो! अगर आपके पास रसोई बनाने की सामग्री हो तो दुर्ग की बगलवाली मेरी कोठरी में आप रसाई बना सकते हैं! इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।''

पिता-पुत्र को बात ठीक जान पड़ी। वे द्वारपाल की कोठरी में पहुँचे और एक घंटे के अंदर खाना बनाकर खा लिया। अब उनके सामने रात्रि-विश्राम की समस्या थी। उस कोठरी में दोनों के सोने के लिए पयप्ति स्थान नहीं था।

बोधिसत्व ने द्वारपाल के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और पूछा, ''भाई। आज रात विश्राम करने के लिए तुम किसी उचित स्थान का पता बता सकते हो?''

''नगर के बाहर एक पर्णशाला है। लेकिन ऐसा कहते हैं कि उसमें भूत-प्रेतों का अड्डा है। अगर आपमें साहस हो तो आप दोनों वहां जाकर आज की रात काट सकते हैं।'' द्वारपाल ने पर्णशाला की दिशा में हाथ से संकेत करते हुए कहा।

भूत-प्रेतों की बात सुनकर बोधिसत्व के पिता एक दम थर थर कांप उठे और उन्हों ने वहां जाने का विचार छोड़ दिया।

लेकिन बोधिसत्व ने उन्हें हिम्मत देते हुए कहा, ''पिताजी! आप संकोच मत कीजिए! मैंने दस वर्ष तक श्रम उठा कर गुरु के पास

अनेक विद्याओं का अध्ययन किया है। आपको उनके महत्व का ज्ञान नहीं है।''
विद्याओं का अध्ययन किया है। आपको उनके महत्व का ज्ञान नहीं है।''

बोधिसत्व के इस उत्तर से पिता के अन्दर साहस आया और वे दोनों नगर-बाहर की उस पर्णशाला में पहुंचे। वह पर्णशाला एकदम सुनसान और अंधेरी थी। उन दोनों ने भीतर प्रवेश किया और दीवार के साथ लगे तख़्तों पर लेट गये।

पिता और पुत्र दोनों लंबी यात्रा करने के कारण थक गये थे, इसलिए वे तख़्तों पर लेटते ही सो गये।

उस पर्णशाला के द्वार की चौखट पर एक नरभक्षी यक्ष निवास करता था। उसे इधर कुछ दिनों से खाना नहीं मिला था, इस कारण वह भूख से अधमरा हो रहा था। उन बाप-बेटों को देखते ही वह खुशी से फूल उठा कि आज कई दिन बाद बढ़िया आहार उसके हाथ लगा है।

पर उसे एक बाधा थी। उसे एक ऋषि का शाप था। वह केवल उसी मनुष्य को खा सकता था, जिसे छींक आने पर 'चिरंजीव' न कहे।

यक्ष बड़ी देर तक इस आशा से इन्तज़ार करता रहा कि बाप-बेटे में से कोई छींक दे। लेकिन बहुत समय बीत गया, दोनों में से कोई नहीं छींका। इस पर यक्ष ने बोधिसत्व के पिता पर एक तेज़ गंधवाला चूर्ण ऊपर से छिड़क दिया। नासिका-पुटों से इस चूर्ण की गंध का स्पर्श होते ही बोधिसत्व के पिता को बड़ी जोर से छींक आगयी। पार्श्ववर्ती बोधिसत्व ने 'चिरंजीव' न कहा। यक्ष प्रसन्न होकर चौखट के ऊपर से नीचे कूद पड़ा। तब बोधिसत्व ने पूरी बात भांप कर अपने पिता की पीठ थपथपाते हुए 'चिरंजीव' कहा।

यक्ष निराश होकर पीछे घूम गया। उसे सताने के ख्याल से बोधिसत्व ने अपने नासिका-पुटों में कपड़े की बत्ती बनाकर घुसायी और बड़ी ज़ोर से छींक दिया।

यक्ष के मन में फिर से आशा जाग उठी। बगलवाले पुरुष ने अगर 'चिरंजीव' न कहा तो वह बोधिसत्व को खाकर अपनी क्षुधा शांत कर लेगा। यह सोचकर वह वापस मुड़ा और उनके

निकट जाने लगा ।

लेकिन तभी बोधिसत्व के पिता ने चिरंजीव' कह कर बोधिसत्व के सिर का स्पर्श कर दिया । अब तो यक्ष का पारा चढ़ गया । उसे ऐसा लगा कि किसी ने उसके मुँह का कौर ही छीन लिया है । पर वह क्या करता ? लाचार होकर वह फिर से द्वार की चौखट पर चढ़ने को हुआ । तभी बोधिसत्व ने जोर से पुकारा, ''यक्ष ! यहां आओ !''

यक्ष ने मुड़ कर देखा । बोधिसत्व के मुखमंडल पर अपार तेज था । यक्ष भयकंपित हो उठा और हाथ बाँधकर बोधिसत्व के सामने आ खड़ा हुआ ।

बोधिसत्व ने यक्ष के ऊपर तीक्ष्ण दृष्टि डाल. और कहा, ''यक्ष ! मैं जानता हूं, तुम नरभक्षी हो ! तुम हम दोनों में से किसी को भी खाकर अपनी भूख मिटा सकते हो । पर तुम ऐसा नहीं करते और चुपचाप वापस लौट जाते हो । ऐसा क्यों ?''

यक्ष ने झुककर बोधिसत्व को प्रणाम किया और बोला, ''हे महातेजस्वी ! मुझे एक ऋषि ने शाप दिया है । भोजन में प्रतिबन्ध होने के कारण मैं विवश हूं ।''

''ऋषि का क्या शाप है ? ऋषि ने तुम्हें शाप क्यों दिया ? साफ़-साफ़ बतादो ।'' बोधिसत्व ने पूछा ।

''पचास वर्ष पहले की बात है । मैं जंगलों में स्वेच्छापूर्वक विचरण किया करता था और जो भी मनुष्य मेरी दृष्टि में पड़ता, उसे अपना

आहार बना लिया करता था । एक बार शाम के समय मैं रात्रि-भोजन के लिए नदी के किनारे भटक रहा था । तभी पेड़ों की ओट से एक मनुष्य नदी की तरफ़ बढ़ा । मैं उसे देखकर खुश हो गया कि अब भरपेट भोजन कर सकूँगा । मैं एक ही छलांग में उछलकर उसके पास पहुँचा और उसकी गरदन दबोच ली । दूसरे ही क्षण मुझे बिजली का आघात लगा और मैं नीचे गिर पड़ा ।''

बोधिसत्व मंदहास करके बोले, ''इसका मतलब यह है कि तुमने अहंकारवश किसी तपस्वी को अपना आहार बनाने की धृष्टता की थी !''

''महानुभाव ! सचमुच ही ऐसा हुआ ! जब

मुझे चेत आया तो मैं उठने को हुआ, लेकिन सामने खड़े दण्ड-कमण्डलुधारी एक ऋषि ने मुझे बायें पैर से ठोकर दी और शाप दिया, "अरे दुष्टपापी ! तू इस प्रदेश में मनुष्यों का संहार करके उनका भक्षण करता है। तूने अनेक जघन्य अपराध किये हैं। उनके दंडस्वरूप मैं तुझे भूख का शिकार बनाना चाहता हूं। जा, आज से तू केवल उन्हीं मनुष्यों को खा सकेगा, जो छींकते हों और जिन्हे छींक आने पर कोई दूसरा 'चिरंजीव' न कहे। इसके अलावा अगर तूने किसी और को अपना आहार बनाने की कोशिश की तो तू जलकर भस्म हो जायेगा। इस तरह मैं शाप ग्रस्त हो गया।" यक्ष ने अपनी आप बीती सुनादी।

यक्ष के मुँह से सारी बात सुनकर बोधिसत्व को उस पर दया आगयी। उन्होंने यक्ष को न केवल शापमुक्त किया, बल्कि उसे हिंसा के कर्म से भी विरक्त कर दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल बोधिसत्व अपने पिता तथा यक्ष को लेकर राजा से मिलने गये।

राजा ने सारा वृत्तान्त सुनकर बोधिसत्व को प्रणाम किया और उनसे विनती की, "महानुभाव ! आप अत्यन्त शक्ति शाली हैं। आपके कारण मेरी प्रजा एक नरमांस भक्षी यक्ष के चंगुल से बच गयी। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप मेरे सेनापति का पद ग्रहण कर यहीं निवास करें।"

बोधिसत्व ने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली। राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा ने बोधिसत्व के पिता का अभूतपूर्व सम्मान किया और यक्ष के बारे में बोधिसत्व का निर्णय माँगा।

बोधिसत्व ने कहा, "महाराज ! इस यक्ष के सारे पाप धुल गये हैं। यह अब पूर्ण सात्विक है। इससे भविष्य में किसी की भी हानि न होगी। आप इसे अपनी अश्व एवं गजशाला का अधियति नियुक्त कर इस को आप की सेवा का अवसर दें !"

राजा ने बोधिसत्व के निर्णय का सम्मान किया और यक्ष को अश्व-गजशाला का अधिपति नियुक्त कर दिया।
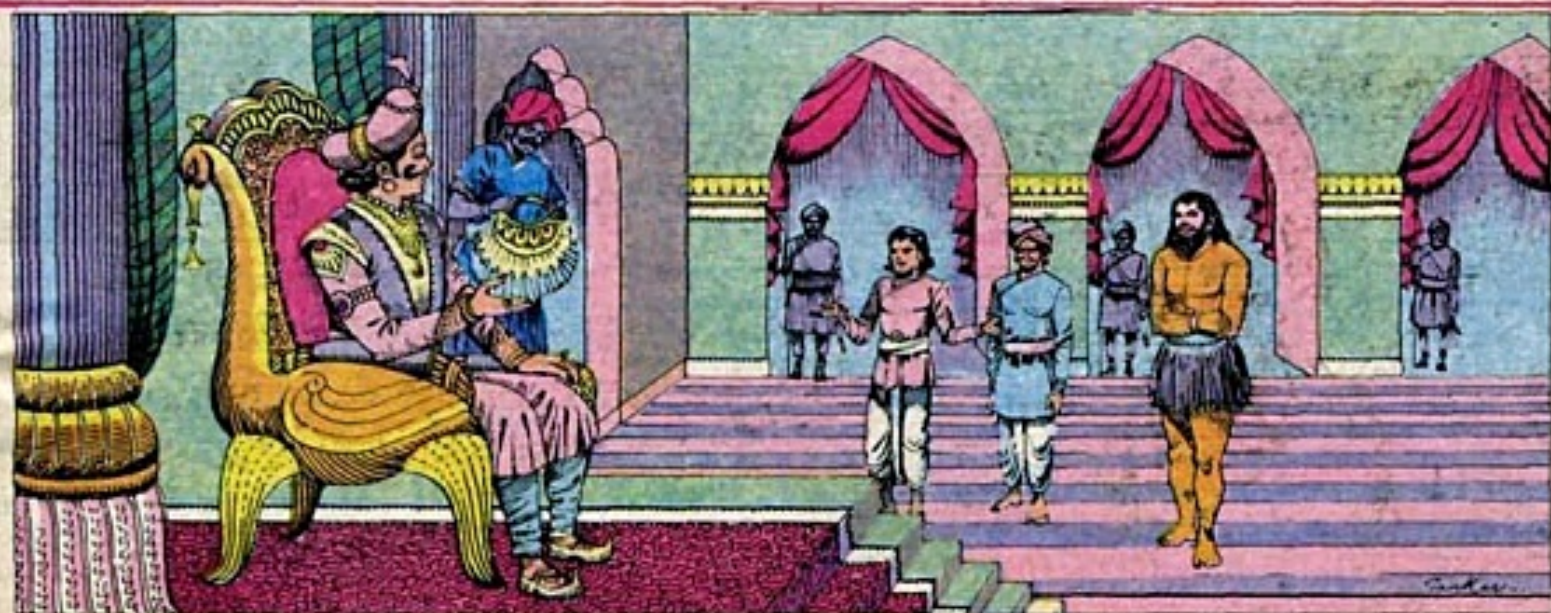
हमारी नदियां

कावेरी

बहुत पहले कभी चोलमंडल पर राजा तोण्डमान का राज्य था। उस काल में एक बार भयंकर अकाल पड़ा। पूरी बरसात निकल गयी, लेकिन पानी की एक बूंद तक न गिरी। नदियां और तालाब सूख गये। प्रजा में हाहाकार मच गया।

प्रजा की भीषण अवस्था देखकर राजा तोण्डमान बहुत विचलित हो गये। राजा अपने भोग-विलास को भूलकर रात-दिन अकाल के निवारण का उपाय सोचने लगे।

राजा ने अकाल की समस्या को हल करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। उन्होंने एक साधारण नागरिक का वेश धारण किया और छुपकर सारे देश का भ्रमण करने लगे। इस देशाटन से उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ। उल्टे राज्य की बुरी दशा देखकर उनका मन पहले से भी अधिक विकल होगया।

उस समय महामुनि अगस्त्य सह्याद्रि पर्वत पर तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस्या पूरी हुई और वे जन-कल्याण का संकल्प लेकर पहाड़ से नीचे उतर आये।

चोल तथा कोडगु राज्यों की सीमा पर राजा तोण्डमान को महामुनि अगस्त्य के दर्शनों का सौभाग्य मिला। अगस्त्य मुनि ने राजा के हृदय की विकलता का अनुभव किया और सारी बातें जानकर उनकी समस्या को किसी न किसी प्रकार हल करने का निश्चय कर लिया।

उस समय कोडगु राज्य पर महाराजा कावेर का राज्य था। महामुनि अगस्त्य ने राजा तोण्डमान को साथ लिया और महाराजा कावेर की राजसभा में पहुँचे।

उन्होंने कावेर से कहा कि सह्याद्रि पर्वत से एक नदी का आविर्भाव होनेवाला है और वे उस नवजन्मा नदी के प्रवाह को चोल राज्य की दिशा में बहा ले जाने का संकल्प कर चुके हैं। महाराजा कावेर ने अगस्त्य मुनि की इस कामना को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

मुनि के आदेशानुसार राजमज़दूर सह्याद्रि पर्वत पर भेज दिये गये। मज़दूर बड़ी-बड़ी चट्टानों को तोड़कर नदी का मार्ग बनाने लगे और कुछ ही दिनों में उन्होंने नदी के प्रवाह को चोलराज्य की ओर लेजाने के मार्ग का निर्माण कर दिया।

इसके बाद महर्षि अगस्त्य ध्यानमुद्रा में बैठ गये। उन्होंने प्रार्थना की कि चट्टानों के बीच छुपी हुई स्रोतस्विनी नदी का रूप धारण करके शीघ्र उफनकर बाहर आजाये।

सब लोग बड़ी उत्कंठा से स्रोतस्विनी के बाहर आने की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ क्षण भी नहीं बीते थे कि जलधारा उफन कर ऊपर आगयी और पहाड़ों एवं तलहटियों से होकर बड़े वेग से चोल राज्य की ओर प्रवाहित होने लगी। नदी के उस प्रवाह को देख तोण्डमान का हृदय आनन्द से भर गया।

महर्षि अगस्त्य ने महाराजा कावेर की कन्या कावेरी के नाम पर इसका नामकरण किया। कोडगु के महाराज ने इसे अपनी और अपनी बेटी की धन्यता के रूप में स्वीकार किया। तब से वह नदी कावेरी नाम से पुकारी जाने लगी।

हम कावेरी नदी को भारत के दो प्राचीन राज्यों की मैत्री का प्रतीक भी मान सकते हैं। कावेरी हमारे देश की प्राचीन नदियों में से एक है और इसे दक्षिण गंगा भी कहते हैं।

कौन सी विद्या श्रेष्ठ है?

प्राचीन काल की बात है। एक ही गाँव के तीन बालक विद्या प्राप्त करने के लिए एक गुरु के पास पहुँचे। गुरु अनेक विद्याओं के ज्ञाता थे और विद्यार्थी की इच्छानुसार विद्या दान दे सकते थे। इन तीनों बालकों में से एक बालक आयुर्वेद का अभ्यास करना चाहता था, दूसरा बालक ज्योतिष शास्त्र और तीसरा तर्कशास्त्र का का अभ्यास करना चाहता था। ये तीनों विद्यार्थी गुरु के पास रहकर कई बरस तक इन तीनों विद्याओं का अध्ययन करते रहे और अपने-अपने विषय में पारंगत हो गये। अब गुरु को केवल उनकी परीक्षा लेना शेष रह गया था।

एक दिन एक प्रौढ़ व्यक्ति गुरु के पास एक जन्मकुंडली लेकर पहुँचा। उसने गुरु से निवेदन किया कि वह इस जन्मकुंडली वाले युवक के साथ अपनी कन्या का विवाह करना चाहता है। उसने कहा, "आचार्य! इस युवक की सारी बातें हमारे लिए सन्तोषजनक हैं। अगर आप इसकी जन्मपत्री देखकर शुभ का निर्देश कर दें तो मैं इसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दूँ।"

गुरु ने जन्मपत्री का अध्ययन कर कहा, "इस युवक की जन्मपत्री में विवाह-योग के साथ दुष्ट ग्रहों की दृष्टि पड़ रही है। इसलिए विवाह के कुछ दिन बाद यह युवक अस्वस्थ हो जायेगा।"

यह उत्तर सुनकर वह आगन्तुक चिन्तित हो गया।

गुरु ने अपने विद्यार्थियों की तरफ़ दृष्टि डाली और उनकी सलाह जानने के लिए पूछा, "इस विषय में तुम लोगों का क्या अभिमत है? इन भद्रपुरुष को क्या करना चाहिए?"

तर्कशास्त्र के विद्यार्थी ने कहा, "हर जन्मपत्री में किसी न किसी दुष्ट ग्रह का योग बना ही रहता है। जब अन्य सारी बातें अनुकूल

[२५ वर्ष पहले 'चन्दामामा' में प्रकाशीत कहानी]

हैं तो यह विवाह सम्पन्न किया जा सकता है ।"

चिकित्सा शास्त्र पढ़ रहे विद्यार्थी ने कहा, "अगर युवक के अस्वस्थ होने की संभावना है तो ऐसा कौनसा व्यक्ति है जिसे कभी कोई रोग न होता हो । ऐसी स्थिति में किसी होशियार वैद्य से उसका इलाज कराया जा सकता है ।"

ज्योतिषशास्त्र के विद्यार्थी ने कहा, "इस बात को लेकर ज्यादा माथापच्ची करने की क्या ज़रूरत है ? जो ग्रह प्रतिकूल हो, विवाह के समय ही उस ग्रह की शांति करवाने से फिर कोई बीमारी न होगी ।"

धीरे-धीरे कुछ दिन बीत गये । एक बार आचार्य किसी कार्यवश पास के गाँव गये । उनके पीछे उनके बेटे को बड़ा तेज़ बुखार हो गया । आचार्य की पत्नी ने बच्चे का बदन छूकर शिष्यों से कहा, "अरे ! मेरे बच्चे का बदन तो तवे की तरह जल रहा है । बताओ, अब क्या करूँ ?"

"ठंडे जल का स्नान करवादें तो ज्वर का ताप घट जायेगा !" यह कहकर तर्कशास्त्री घड़ा लेकर नदी की तरफ़ चल पड़ा ।

ज्योतिषशास्त्री पंचांग खोलकर तिथि, वार, नक्षत्र और ग्रहों की गति का हिसाब लगाने बैठे गया ।

चिकित्साशास्त्री ने बच्चे की नाड़ी की जाँच की । उसके रोग का निदान करके आवश्यक औषधियां अपनी पेटी में से निकालीं और उनके चूर्ण को शहद में घोलकर उस औषध को बच्चे की जीभ पर मल दिया ।

उसी शाम आचार्य पास के गाँव से लौट आये । तब तक बच्चा पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया था ।

आचार्य की पत्नी ने सारा समाचार अपने पति को दिया और कहा, "मैंने ज्योतिष और चिकित्सा शास्त्र से होनेवाले फ़ायदे तो देख लिये, लेकिन यह तर्कशास्त्र किस काम का है ? आपके पास तर्कशास्त्र पढ़ने वाला वह विद्यार्थी तो महान मूर्ख है । वह ज्वर से पीड़ित बच्चे को ठंडे पानी से नहलाना चाहता था ।"

"ज्योतिष और वैद्यक तो किसी खास प्रसंग के उपस्थित होने पर ही काम देते हैं, पर तर्कशास्त्र हमेशा काम देता है । मैं कल ही

उसकी परीक्षा लूँगा।" यह कहकर आचार्य ने अपनी पत्नी को यह समझा दिया कि कल वह क्या करेंगे, किस प्रकार अपने शिष्य की परीक्षा लेंगे और उनकी पत्नी को उसमें क्या सहयोग देना है !

दूसरे दिन दोपहर को जब सब लोग एक साथ खाना खा रहे थे। तब मुँह में कौर रखते हुए आचार्य अचानक चिल्ला उठे, "अरे बच्चो ! देखो ! भूल से मैंने सेम के बीज के बराबर जहरीले कीड़े को निगल लिया है !" यह कहकर आचार्य बेहोश होने का अभिनय करते हुए शिथिल होकर दीवार की टेक लेकर लुढ़क गये ।

"ओह ! देखो बच्चो ! गुरुजी को यह क्या हो गया है ?" उनकी पत्नी ने चिल्लाकर कहा।

इस पर ज्योतिष और चिकित्साशास्त्री विद्यार्थी भोजन करना बंद कर उठ खड़े हुए। उन्होंने हाथ धोये और एक ने जल्दी से पंचांग निकाला और दूसरे ने नाड़ी की जाँच करना प्रारंभ कर दिया। लेकिन तर्कशास्त्री ने पल भर के लिए गुरु पर अपनी दृष्टि दौड़ायी और फिर शांत भाव से भोजन करने लगा ।

इस पर गुरुपत्नी ने रोषभरे स्वर में उससे पूछा, "तुम भी कैसे शिष्य हो ? गुरु ज़हरीला कीड़ा निगलकर बेहोश होगये हैं। तुम उनकी चिंता न करके खाना निगलने में लगे हुए हो ?"

"माताजी ! गुरुजी ने किसी ज़हरीले कीड़े को नहीं निगला। गुरु जी इतने पागल नहीं हैं कि एक ज़हरीले कीड़े को देखकर भी उसे निगल लें। अगर वह ज़हरीला कीड़ा भूल से मुख में चला भी गया होता तो वे उसे कौर के साथ ही तुरन्त थूक देते, निगलते नहीं ।" तर्कशास्त्री ने निश्चित स्वर में कहा ।

उसका उत्तर सुनकर गुरु आँखें खोलकर उठ बैठे और अपनी पत्नी से बोले, "अब तो समझ गयीं न, तर्कशास्त्र का क्या उपयोग है !"

इसके बाद आचार्य ने तीनों शिष्यों को शिक्षा समाप्त होने का समाचार सुनाया और उन्हें प्रेमपूर्वक अपने आश्रम से विदा किया।

मैत्री किसके साथ ?

अवन्ती राज्य के महामंत्री अपनी विद्वत्ता के लिए लोक में अत्यन्त विख्यात थे। अचानक उनका देहांत हो गया। अब राजा ने उनके स्थान पर उतने ही विद्वान एक महामंत्री को नियुक्त करना चाहा। उस पद के उम्मीदवार होकर राम शर्मा, कृष्ण शर्मा तथा अनन्त शर्मा-ये तीन व्यक्ति राजा से मिलने आये।

सबसे पहले राजा ने राम शर्मा को बुलाया और कहा, "राजा वीरसेन तथा शक्तिसेन हमारे पड़ोसी राजा हैं। उन दोनों के बीच बहुत पुरानी शत्रुता है। अब उन दोनों ने ही मेरे पास अपने दूत भेजे हैं और मेरी मैत्री के लिए इच्छा प्रकट की है। इनमें वीरसेन शक्तिशाली और शक्तिसेन दुर्बल है। अगर मैं एक के साथ मैत्री करूँ तो दूसरा मुझसे असन्तुष्ट हो जायेगा। ऐसी स्थिति में मेरा क्या कर्त्तव्य है ?"

"आप शक्तिशाली वीरसेन के साथ मैत्री कीजिए। दुर्बल के प्रति स्नेह रखने से कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा।" राम शर्मा ने सलाह दी।

राजा ने रामशर्मा को विदा कर कृष्णशर्मा को बुलाया और उसके सामने भी अपनी समस्या को ज्यों का त्यों रख दिया।

कृष्णशर्मा ने सुझाव दिया, "आप दुर्बल होने पर भी शक्तिसेन के साथ मैत्री कीजिए। शक्तिशाली के साथ मैत्री करना उतना ही असंगत है जैसा खरगोश का भेड़िये के साथ मैत्री करना।"

राजा ने कृष्ण शर्मा को विदा करके अनन्त शर्मा को बुलाया और उसके सामने भी वही सवाल दोहरा दिया।

सब सुनकर अनन्त शर्मा ने सुझाव दिया, "महाराज ! आपके लिए इन दोनों की ही मैत्री हितकर नहीं है। दुर्बल शक्तिसेन आपकी सहायता पाकर शक्तिशाली वीरसेन का अंत करने के लिए कोई भी षडयंत्र रच सकता है। इस तरह वीरसेन आपका शत्रु बन जायेगा।"

"मैं उन दोनों के पास क्या सन्देश भेजूँ कि वे मुझसे असन्तुष्ट न हों।" राजा ने पूछा।

अनन्त शर्मा ने कहा, "महाराज ! यह तो बड़ी सरल बात है। आप वीरसेन के दूत से कहिये कि अगर उसके राजा शक्तिसेन के साथ सुलह करके आपके पास मैत्री-प्रस्ताव करें तो आपको उनकी मैत्री स्वीकार है। इसी तरह शक्तिसेन के दूत से कहिये कि अगर उसके राजा वीरसेन के साथ संधि करके आपके साथ मैत्री का प्रस्ताव करें तो आपको उनकी मैत्री स्वीकार है। दोनों दूतों को आप ये सन्देश दे दीजिए। ऐसा करने से आपके प्रति वीरसेन और शक्तिसेन किसी के भी मन में द्वेष नहीं होगा।"

अनन्तशर्मा का उत्तर सुनकर राजा ने अनन्तशर्मा को अपने महामंत्री पद पर नियुक्त कर लिया।

तांत्रिक की घाटी

चंद्रगिरि और मित्रपुर दो पड़ोसी देश थे। चंद्रगिरि की तुलना में मित्रपुर ज्यादा शक्तिशाली देश था। चंद्रगिरि के राजा रुद्रसेन की पत्नी मित्रपुर के राजा की बहन थी, इसलिए रुद्रसेन को मित्रपुर के राजा से हर तरह का सहयोग प्राप्त होता था।

रुद्रसेन के दो बच्चे थे। पुत्री का नाम सुवर्णा और पुत्र का नाम विजय था। सुवर्णा सोलह वर्ष की हो चुकी थी और विजय अभी चौदह वर्ष का था। दोनों ही बच्चे अत्यन्त सुन्दर और साहसी थे।

चंद्रगिरि की दक्षिणी सीमा पर समुद्र था और चंद्रगिरि तथा समुद्र के बीच एक पर्वतमाला फैली हुई थी। इन्हीं पर्वतमालाओं के बीच कुछ घाटियां थीं और उन्हीं की एक दुर्गम घाटी में भैरव शर्मा नाम का एक तांत्रिक रहा करता था। लोगों में ऐसी प्रतीति थी कि भैरव शर्मा अनेक अद्भुत शक्तियों का स्वामी है। वह अपनी शक्तियों के बल पर मनुष्यों को वृक्षों में, वृक्षों को जानवरों में और जानवरों को पत्थरों में बदल सकता है। भैरवशर्मा के आतंक के कारण कोई भी मनुष्य उस घाटी की ओर जाने की हिम्मत नहीं करता था।

भैरव शर्मा की मृत्यु के बाद उसके शिष्य विकट शर्मा ने उस घाटी को अपना आवास बना लियाा। विकट शर्मा अक्सर उस घाटी के निकटवर्ती गाँवों में आया-जाया करता था। वह कभी-कभी राजा रुद्रसेन के राजमहल में भी आता था। राजा रुद्रसेन तांत्रिक के प्रति थोड़ा आदर दिखा दिया करते थे। उनका विश्वास था कि जिन लोगों में दूसरों को हानि पहुँचाने वाली मंत्र-तंत्र की शक्तियां हों, उनसे दुश्मनी मोल नहीं लेनी चाहिए।

साल में एक विशेष पर्व के अवसर पर राजकुमार विजय तथा राजकुमारी सुवर्णा अपने मामा के घर मित्रपुर जाया करते थे। इसी पर्व

किशनलाल

विजय और सुवर्णा ने पहाड़ी प्रदेश में पहुंचने के बाद अपने घोड़े रोके और अंगरक्षकों के लिए पीछे मुड़कर देखा। दूर-दूर तक उनका पता नहीं था। दोनों ने जहां अपने घोड़े रोके थे, वह इलाका पूरी तरह निर्जन था और पहाड़ी शिलाओं तथा महावृक्षों से भरा हुआ था। वे कुछ दूर और आगे बढ़े तो रास्ते में एक मोड़ आया। उन्होंने देखा, सामने दो रास्ते हैं , एक दायीं ओर जा रहा है और दूसरा बायीं ओर। बायीं ओर का रास्ता मित्रपुर की तरफ़ जाता था। दायीं ओर का रास्ता संकरा और पथरीला था, वह तांत्रिक विकट शर्मा की घाटी की तरफ़ जाता था।

पर वे दोनों एक बार अपने मामा की राजधानी के लिए रवाना हुए।

राजा रुद्रसेन उन्हें रथ में भेजना चाहते थे, लेकिन सुवर्णा तथा विजय ने घोड़ों पर जाने की हठ की। वे सभी पहाड़ी रास्तों से भलीभांति परिचित थे, साथ ही, श्रम तथा साहसपूर्ण कार्यों में उन दोनों की बहुत रुचि थी।

राजा रुद्रसेन ने राजकुमारी सुवर्णा और राजकुमार विजय के अंगरक्षकों के रूप में चार घुड़सवार भेजे। यात्रा शुरू हुई। नगर की सीमा पार होने तक विजय और सुवर्णा धीरे-धीरे चलते रहे, लेकिन नगर-सीमा के बाहर निकलते ही उन्होंने अपने घोड़ों को ऐड़ लगा दी। परिणाम स्वरूप अंगरक्षक काफी पीछे छूट गये।

अभी विजय और सुवर्णा कुछ ही कदम और आगे बढ़े होंगे कि उन्हें एक बड़ी शिला की ओट से ये शब्द सुनाई दिये, "थोड़ा रुक जाइये !"

भाई-बहन के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने उस शिला के पीछे की तरफ़ दूर तक दृष्टि डाली, जहां से वह आवाज़ आयी थी। तभी विकट शर्मा उनके सामने आकर खड़ा हो गया। विजय और सुवर्णा विकट शर्मा से परिचित थे। उन्होंने उसे कभी-कभी अपने पिता के पास आते-जाते देखा था। पर वे यह नहीं जानते थे कि वह एक तांत्रिक है।

"घोड़ों से उतरकर आप दोनों प्रसाद लेते जाइये। आपका कल्याण होगा!" विकट शर्मा ने कहा।

राजकुमार और राजकुमारी अपने घोड़ों पर से उतर पड़े ।

"प्रसाद ग्रहण करने के पहले अपने हाथ-मुँह धो लीजिए !" यह कह कर विकट शर्मा ने एक लाल कमण्डलु से पानी लेकर उन्हें दिया। दोनों ने उस जल से अपने हाथ-मुँह धो लिये । इसके बाद तांत्रिक ने उन्हें शहद में भिगोये हुए केले के टुकड़े दिये। दोनों ने प्रसाद के वे टुकड़े खा लिये ।

"अब आप प्रस्थान कीजिए ! फिर मिलेंगे ।" विकट शर्मा ने कहा ।

इसके बाद विजय और सुवर्णा ने अपने घोड़ों को ऐड़ लगायी। घोड़े तेज़ गति से दौड़ने लगे । वे लगातार आधे घंटे तक दौड़ते रहे । विजय कुछ क़दम आगे जा रहा था । उसने अपना घोड़ा रोका और सुवर्णा से कहा, "बहन ! सुनो कहीं हम रास्ता भटक तो नहीं गये ?"

"मैं भी तुमसे यही पूछना चाहती थी !" सुवर्णा ने चारों तरफ़ दृष्टि दौड़ा कर कहा ।

सुवर्णा को रास्ते के किनारे पर एक मकान दिखाई पड़ा । उसने वह मकान विजय को दिखाकर कहा, "विजय ! चलो हम उस मकान के मालिक के पास चलते हैं । उससे पूछकर मित्रपुर के सही रास्ते का पता लगायेंगे ।"

दोनों उस मकान के निकट गये और घोड़ों से उतरकर उन्हें एक पेड़ के तने से बाँध दिया। मकान के सामने पहुँचकर उन्होंने दरवाज़े पर दस्तक दी । दरवाज़ा तो खुल गया, लेकिन अन्दर से कोई आवाज़ सुनाई नहीं दी। दोनों ने
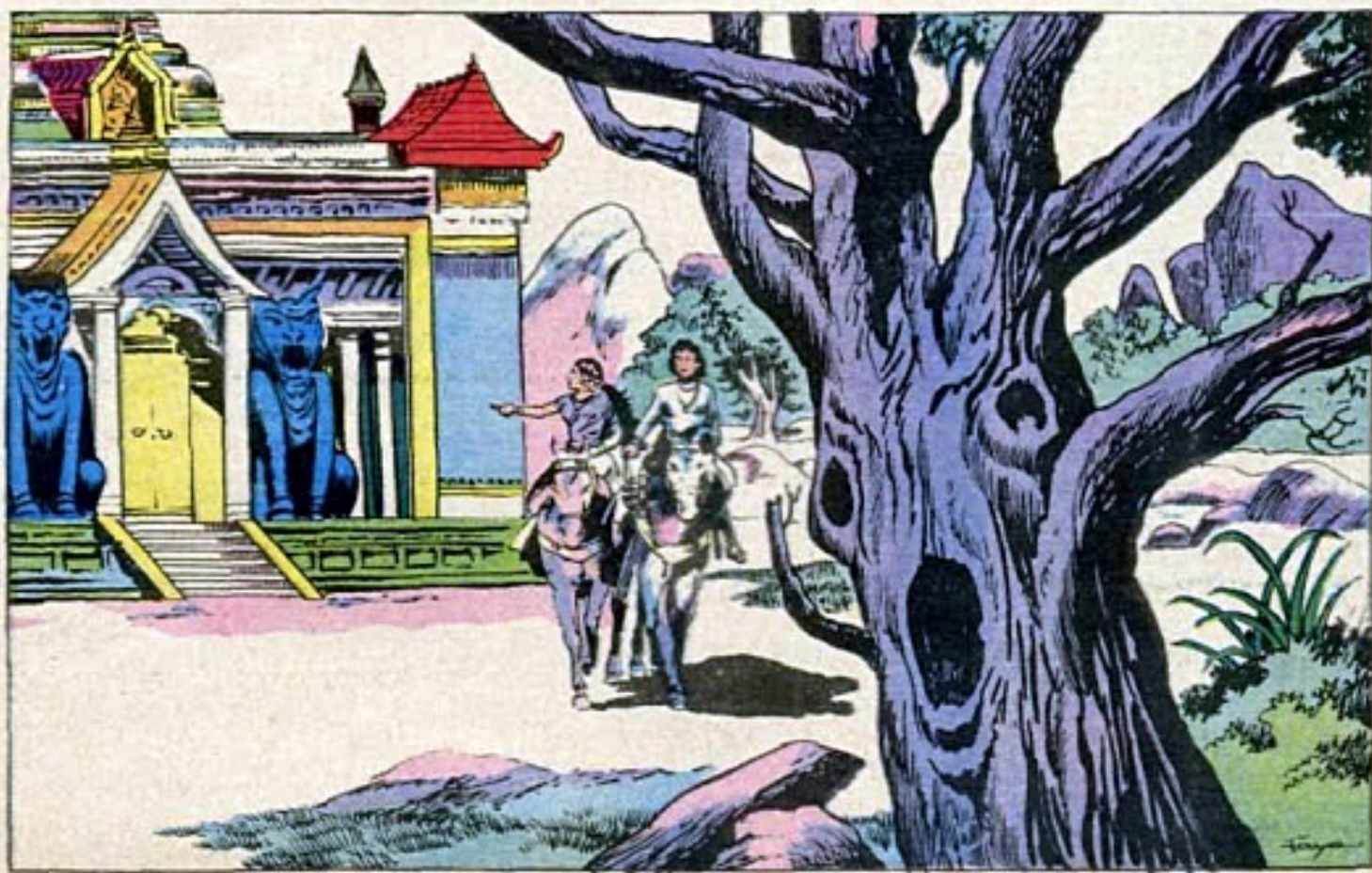
मकान के भीतर क़दम रखा। आश्चर्य की बात कि दूसरे ही क्षण भारी आवाज़ के साथ किवाड़ अपने आप बन्द होगये। सामने तांत्रिक विकट शर्मा खड़ा मंद-मंद मुस्करा रहा था।

विजय और सुवर्णा के आश्चर्य की सीमा न रही। पर वे शांत बने रहे। उन्होंने अपना आश्चर्य प्रकट नहीं किया। सुवर्णा ने तांत्रिक से कहा, "हम दोनों मित्रपुर जाते हुए रास्ता भटक गये हैं।"

इसके उत्तर में तांत्रिक कुटिल हास करके बोला, "राजकुमारी, तुम रास्ता भटक कर इस तरफ़ नहीं आयी हो, बल्कि तुम चंद्रगिरि की भावी रानी बनने के ठीक रास्ते पर ही चल रही हो!"

"आप गलत समझ रहे हैं। चंद्रगिरि के सिंहासन का उत्तराधिकारी मेरा छोटा भाई विजय है। उसकी पत्नी उस देश की रानी बनेगी।" सुवर्णा ने कुछ कठोर होकर कहा।

"परिस्थितियों के प्रभाव से कोई दूसरा पुरुष चंद्रगिरि का राजा बनकर तुम्हारे साथ विवाह करेगा और इस तरह तुम्हें चंद्रगिरि की रानी बनायेगा। क्या ऐसा नहीं हो सकता?" विकट शर्मा ने पूछा।

"इसमें क्या मेरी इच्छा का कोई मूल्य नहीं होगा?" सुवर्णा का क्रोध अब पूरी तरह प्रकट होगया था।

"तुम्हारी इच्छा और अनिच्छा का इसमें कोई अर्थ नहीं है!" कहकर विकट शर्मा द्वार की ओर बढ़ा।

"रुक जाओ! हमें यह बताओ कि हमारे भीतर पहुँचते ही दरवाज़ा किसने बन्द किया था?" विजय ने पूछा।

"इससे तुम्हें कोई मतलब नहीं। अब हुम दोनों यहां से बाहर नहीं जा सकते।" कहकर तांत्रिक मकान से बाहर होगया और दरवाज़ा एक विशेष तरह के खटके की आवाज़ से बंद हो गया।

"हम दोनों इस दुष्ट के बंदी बन गये हैं।" विजय बोला।

सुवर्णा का चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था। अब वे दोनों मकान के अंदर की तरफ़ गये और वहां का दरवाज़ा खोला। अंदर के विशाल

अहाते में रुद्रदेवी की भयंकर प्रतिमा देखकर दोनों ही क्षण भर को कांप उठे। दोनों के ही मुंह से कोई शब्द नहीं निकला।

रुद्रदेवी की प्रतिमा के पीछे एक ऊँची दीवार थी। उसमें एक खिड़की बाहर की तरफ़ खुली हुई थी। विजय और सुवर्णा बिना किसी आहट के वहाँ पहुँचे और खिड़की में से झाँक कर देखा। बाहर एक विकृत आकृति वाला बौना खड़ा हुआ था।

विजय ने उसे लालच देते हुए कहा, "अरे भाई ! सुनो, तुम दरवाज़ा खोल दो ! हम महाराजा से कहकर, जो भी इनाम चाहोगे, तुम्हें दिलवायेंगे।"

बौना जोर से अट्टहास कर उठा, बोला, "दरवाज़े की चाबी मेरे मालिक के पास है, वही दरवाज़ा खोलेंगे। पर तुम मेरा एक काम कर दो। मुझे प्यास लगी है। देवी की प्रतिमा के पीछे रखी पानी की सुराही मुझे दे दो !"

विजय ने पानी की सुराही लाकर बौने को पकड़ा दी। उसने गटागट पानी पिया और कहा, "मुझे तुम्हारा सिर काटना है !"

सुवर्णा ने चकित होकर पूछा, "सिर काटना है ? लेकिन क्यों ?"

"मेरे मालिक देवी को प्रसन्न करना चाहते हैं। इसके बाद वे तुमसे विवाह करेंगे। वे राजा बनेंगे और तुम रानी बन जाओगी। उस वक्त तुम मुझे मत भूल जाना। मेरे मालिक ने मुझे चंद्रगिरि का सेनापति बनाने का वचन दिया है।" बौने ने कहा।

"अच्छा, तो तुम मेरा सिर काटनेवाले हो ?" राजकुमार विजय ने दांत पीस कर कहा।

"जी हाँ ! यह काम मुझे ही सौंपा गया है। इस काम के लिए मैंने एक सौ बीस बकरों के सिर काटकर कुशलता प्राप्त की है।" बौना बोला।

"च् च् ! तुमने तो बड़ा श्रम उठाया। अगर हम इस घाटी में न आते तो तुम्हें इस कठिन श्रम से मुक्ति मिल जाती।" विजय ने कहा।

बौना बड़े विकट रूप से हँसा। फिर बोला, "अरे वाह ! तुम दोनों इस घाटी में आये बिना कैसे रह सकते थे ? मेरे मालिक के लाल

कमण्डलु के जल से तुम दोनों ने हाथ-मुँह धोये। वह जल मंत्रशक्ति से भरा हुआ था। अगर वह किसी की आंख से स्पर्श कर जाये तो उसे बायीं ओर की चीज़ दायीं तरफ़ दिखाई देने लगती है। इसीलिए तुम्हें मित्रपुर जानेवाला बायीं ओर का मार्ग दायीं तरफ़ दिखाई दिया और तुम इस घाटी में चले आये।" यह कहकर वह बौना थोड़ी देर के लिए रुका, फिर बोला, "राजकुमार! अंगूर का रस पीकर मेरी प्यास और बढ़ गयी है। इस सुराही को तो वहीं रख दो और वहीं पास में रखा स्वच्छ पानी ला दो!"

बौने की बातों से विजय को तांत्रिक का एक रहस्य मालूम हो गया था। वह गंभीरता से कुछ सोचने लगा। आगे के कर्तव्य पर विचार करते हुए वह रुद्रदेवी की प्रतिमा के निकट पहुँचा और उसके दूसरी तरफ़ रखे जलपात्र को लाकर बौने को थमा दिया।

बौने ने थोड़ा-सा जल पिया। फिर उस पात्र को विजय के हाथ में लौटाकर बोला, "इसका सारा जल अभी नहीं पीना चाहिए। तुम्हारा सिर काटने से पहले इसके जल से हाथ-मुँह भी तो धोना होगा।"

विजय जब उस जलपात्र को देवी की प्रतिमा की बगल में रखने को हुआ, तब उसे दीवार से सट कर रखा हुआ तांत्रिक का लाल कमण्डलु दिखाई पड़ा। विजय की बुद्धि एकदम पैनी हो उठी। उसने जलपात्र के बचे हुए जल को जल्दी से फेंका और लाल कमण्डलु के जल को जलपात्र में डाल दिया। फिर सब चीज़ें यथास्थान रख दीं।

सुवर्णा सब चुपचाप देख रही थी। विजय बहन की तरफ़ बढ़ा कि तभी तांत्रिक विकट शर्मा हठात् दरवाज़ा खोलकर अन्दर आया और एक पात्र में से थोड़ी सी भस्म लेकर उनके ऊपर छिड़क दी। दूसरे ही पल वे दोनों बेहोश होकर नीचे गिर पड़े। तांत्रिक ने विजय को उठाकर रुद्रदेवी की प्रतिमा के बायीं तरफ़ रख दिया और स्वयं दायीं तरफ़ आसीन हो गया।

बौना तलवार लेकर वहां पर आया। उसने सबसे पहले अपने मालिक को प्रणाम किया और विजय ने मंत्रजल से जिस पात्र को भर

दिया था, उसमें से जल लेकर हाथ-मुँह का प्रक्षालन किया ।

इसके बाद उस बौने ने तलवार उठायी और आगे उछलकर एक ही झटके में सिर काट डाला, फिर अट्टहास कर बोला, "ओह ! अच्छा हुआ कि मैंने इसके पहले एक सौ बीस बकरों के सिर काटकर अनुभव प्राप्त कर लिया था । मालिक ! अब आप मुझे चंद्रगिरि का सेनापति बनाना मत भूलना ।" विजय को प्रणाम करते हुए बौने ने कहा ।

लाल कमण्डलु का जल आँखों से लगते ही बौने को बायीं तरफ़ बैठा विजय दायीं तरफ़ बैठा हुआ दीख पड़ा था । उसने विजय के बदले अपने मालिक विकट शर्मा का ही सिर काट डाला था ।

तांत्रिक की मृत्यु के साथ ही विजय और सुवर्णा पर छिड़की मंत्र-भस्म का प्रभाव जाता रहा । चेतन होते ही विजय ने उठकर बौने के सिर पर प्रहार किया । उसने जोर की चीख मारी और नीचे गिर कर छटपटाने लगा ।

विजय और सुवर्णा तांत्रिक के भवन से दौड़कर बाहर निकले । पेड़ के तने से दोनों के घोड़े अभी भी बँधे हुए थे । उन्होंने उन्हें खोला और फुर्ती से उन पर सवार हो गये । उन्होंने अब मित्रपुर जाने का इरादा छोड़ दिया और अपनी राजधानी चंद्रगिरि की तरफ़ अपने घोड़ों को दौड़ा दिया ।

जब वे अपने पिता के पास पहुँचे तो मित्रपुर से लौटे उनके अंगरक्षक राजा रुद्रसेन से कह रहे थे, "महाराज ! राजकुमार और राजकुमारी मित्रपुर नहीं पहुँचे हैं ।"

सामने ही पुत्र और पुत्री को सकुशल देखकर राजा की खुशी का ठिकाना न रहा । उन्होंने दोनों को गले से लगाया और मित्रपुर न जाकर इस तरह लौट आने का कारण पूछा ।

"पिताजी ! हमने एक दुष्ट तांत्रिक का अंत कर डाला है । सारा वृत्तान्त हम बाद में सुनायेंगे । हमें बहुत प्यास लगी है । पहले हमें पीने का पानी चाहिए ।" विजय ने कहा । सुवर्णा मंद मुस्करा रही थी ।

पुरस्कार

एक समय की बात है, भरतपुर पर राजा विजय वर्मा का राज्य था। राजा विजय वर्मा को इस बात का पूरा विश्वास था कि वे अपनी प्रशंसा पर कभी कान नहीं देते हैं। अपने इस गुण को सब पर प्रकट करने के उत्साह में आकर उन्होंने यह घोषणा की कि जो व्यक्ति उनकी प्रशंसा करके उन्हें सन्तुष्ट करेगा, उसे एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ पुरस्कार में दी जायेंगी।

अनेक कवि और पंडितों ने राजा की प्रशंसा करके उन्हें प्रसन्न करना चाहा, पर सफल नहीं हुए।

एक दिन एक गरीब ब्राह्मण राजदरबार में आया और बोला, "महाराज ! मैंने अनेक राजा-महाराजाओं के दर्शन किये। उनमें से एक भी राजा ऐसा न मिला जो अपनी प्रशंसा सुनने का लालायित न रहा हो। आप ही अकेले ऐसे राजा हैं जो अपनी प्रशंसा से दूर रहना चाहते हैं।"

ब्राह्मण के वचनों से राजा को विशेष प्रसन्नता हुई। उन्होंने उस ब्राह्मण को सौ स्वर्ण मुद्राएँ भेंट कीं। ब्राह्मण ने वह धन लेकर मुस्कराते हुए कहा, "महाराज ! एक लाख मुद्राओं में से ये सौ मुद्राएं घटाकर शेष मुद्राएं भी दिला दीजिए !"

ब्राह्मण के मुख से ऐसी विपरीत बात सुनकर राजा को क्रोध आगया। वे कठोर स्वर में बोले, "एक लाख मुद्राएं कैसी ?"

"आपने घोषणा करवायी थी कि जो आपकी प्रशंसा करके आपको प्रसन्न करेगा, उसे आप एक लाख मुद्राएं पुरस्कार में प्रदान करेंगे। अभी थोड़ी देर पहले आप मेरे स्तुति-वचन सुनकर प्रसन्न हुए हैं, लेकिन आपने मुझे सिर्फ़ सौ मुद्राएं दी हैं !" ब्राह्मण ने स्पष्टीकरण दिया।

राजा विजय वर्मा समझ गये कि वे अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हुए हैं। उन्होंने ब्राह्मण को एक लाख मुद्राएं दिला दीं।"

ब्रह्मा प्रकट हुए और प्रसन्न होकर वज्रांग से कहा, "तुम्हारी तपस्या पूरी हुई। तुम मुझसे कोई वर माँगो !"

"महात्मन् ! मेरी पत्नी देवताओं पर विजय पा सकनेवाले पुत्र की कामना करती है। आप यही वर दीजिए कि उसके गर्भ से ऐसा पुत्र उत्पन्न हो !" वज्रांग ने हाथ जोड़कर कहा।

ब्रह्मा प्रसन्न भाव से 'ऐसा ही हो' कहकर अन्तर्धान होगये। वज्रांग अपने भवन में लौटा और अपनी पत्नी से बोला कि तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगया है।

थोड़े दिनों बाद वज्रांग की पत्नी वरांगी गर्भवती हुई और दसवें माह के आरम्भ में एक दिन सुबह के समय उसने एक पुत्र को जन्म दिया। त्रैलोक्य शूर उस पुत्र के पैदा होते ही पृथ्वी काँप उठी। चारों दिशाओं में अग्नि-ज्वालाएँ धधक उठीं। समुद्रों में ज्वार आगया। वात्याचक्र पैदा हुआ, पेड़ जड़सहित उखड़कर नीचे गिरने लगे। ऐसे अनेक उत्पातों को देखकर प्रजा में त्राहि-त्राहि मच गयी।

वज्रांग और वरांगी ने अपने पुत्र का नामकरण कर उसे तारक नाम दिया और उसे अत्यन्त लाड़-प्यार से पालने लगे।

तारक की शक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। उसकी पर्वताकार देह देखनेवालों को भयंकर प्रतीत होने लगी।

वरांगी ने एक दिन तारक से कहा, "बेटा ! तुम ब्रह्मा को लक्ष्य कर तपस्या करो और उनसे ऐसा वरदान प्राप्त कर लो कि तुम तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर सको और अपने त्रैलोक्य

शूर नाम को सार्थक कर सको ।"

तारक ने अपनी मां की बात मानकर एक निर्जन प्रदेश में घनघोर तपस्या प्रारम्भ कर दी। उस तपस्या के कारण तारक के भीतर दुस्सह ताप पैदा हुआ। ऐसा प्रतीत होने लगा कि तीनों लोक भस्म हो जायेंगे। तब देवगण और ऋषि ब्रह्मा के पास पहुँचे। सबने उनसे निवेदन किया, "महात्मन् ! आप तारक की तपस्या बन्द कर वाकर तीनों लोकों की रक्षा करें। वरना, इस प्रचंड ताप से सब जल जायेगा।"

ब्रह्मा सरस्वती केसाथ हस-वाहन पर आरूढ़ होकर तारक के पास पहुँचे और बोले, "तारक ! मैं तुम्हारी तपस्या पर प्रसन्न हूं। तुम अपना मनोवांछित वर माँग लो।"

तारक ने आनन्दित होकर ब्रह्मा को प्रणाम किया और कहा, "हे भगवान ! आप पधारे, आपने वरदान देने का अनुग्रह किया, इतने से ही मेरी तपस्या सफल हो गयी। आप मुझे तीनों लोकों पर विजय पाने की शक्ति दीजिए। साथ ही, यह वरदान भी दीजिए कि भगवान शिव के अंश से जन्मे व्यक्ति के अलावा अन्य किसी के द्वारा मेरी मृत्यु न हो। मैं ये ही दो वर आपसे चाहता हूं।"

ब्रह्मा ने तारक को दोनों वर प्रदान किये और सत्य लोक को चले गये। तारक अपनी राजधानी शोणित नगर लौट आया। उसने अपनी माता एवं गुरु शुक्राचार्य को ब्रह्मा से प्राप्त हुए वरों का समाचार सुनाया। उसने शुक्राचार्य से यह निवेदन भी किया कि वे तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रस्थान का मुहूर्त तय कर दें।

शुक्राचार्य ने शुभ घड़ियां देखकर तारक की दिग्विजय के लिए मुहूर्त निश्चित किया। उसी मुहूर्त में तारक ने चतुरंगिणी सेना लेकर स्वर्ग पर आक्रमण कर दिया। देवताओं को पराजित किया, इंद्र से उपहार लिये और उसके सिंहासन पर अधिकार कर लिया।

इसके बाद तारक ने वरुण पर हमला किया और उसे पराजित कर उसके रथ और अश्वों को उपहार में प्राप्त करके इसके बाद यमराज पर आक्रमण कर दिया। एक-एक करके उसने सारी दिशाओं पर आधिपत्य कर लिया। उसने

समस्त दिक्पालों से असंख्य उपहार प्राप्त किये और अपनी राजधानी शोणित पुर लौट कर सुखपूर्वक दिन बिताने लगा ।

एक दिन की बात है, महर्षि नारद तारक से मिलने आये । तारक ने आगे बढ़कर नारद का स्वागत किया, अर्घ्य देकर उनका सम्मान किया और उन्हें सादर अपने भवन में ले जाकर सिंहासन पर बिठाकर बोला, "महात्मन् ! आपकी कृपा से मैंने सारी दिशाओं पर विजय पा ली है ।"

सुनकर नारद बोले, "तारक ! तुमने ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर समस्त दिशाओं पर विजय प्राप्त की है । यह कोई बड़ी बात नहीं है । तुम्हारा संहार कर सके, ऐसा भी कोई नहीं है, क्योंकि तुमने ब्रह्मा से यह वर भी प्राप्त किया है कि शिवांश से उत्पन्न व्यक्ति के अलावा और कोई तुम्हें नहीं मार सकता । शिव तो वैरागी बनकर तपस्या कर रहे हैं । इसलिए यदि तुम सचमुच अपने 'त्रैलोक्यशूर' नाम से यशस्वी होना चाहते हो तो वैकुण्ठ पर भी विजय प्राप्त कर लो !"

तारक ने नारद की सम्मति स्वीकार कर अपनी सेनाओं को लेकर वैकुण्ठ पर घेरा डाल दिया और युद्ध भेरी बजवा दी । विष्णु को मालूम था कि तारक को वरदान प्राप्त हैं, इसलिए युद्ध में उसे पराजित करना या उसका संहार करना असंभव है । विष्णु स्वयं तारक के पास गये । मीठी बातों से उसे समझाया और

सेना सहित वापस भेज दिया ।

...इधर कैलास में शिव ने पार्वती की परिचर्या को स्वीकार कर लिया । इससे पिता हिमवान को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । वे पार्वती को उनकी सखियों के साथ शिव के पास लेगये, सबसे उन्हें प्रणाम करवाया और फिर हाथ जोड़कर बोले, "आप इन कन्याओं सहित पार्वती की परिचर्या स्वीकार करें और इनकी किसी भी भूल चूक को क्षमा प्रदान करें ।"

हिमवान ने पार्वती और उनकी सखियों को शिव की सेवा में समर्पित किया और स्वयं मेनका को लेकर अपने निवास स्थान को लौट गये ।

उस दिन से पार्वती प्रति दिन अपना समय

शिव की परिचर्या में बितातीं । वे उनके लिए श्रेष्ठ फल-फूलों का चयन करतीं, जल अर्पण करतीं और घर लौटकर अपनी सेवा-आराधना का समाचार सबको बड़े प्रसन्न भाव से सुनातीं ।

...तारक ने शोणितपुर में कुछ ही दिन बिताये, फिर वह अपनी सेनाएँ लेकर स्वर्ग में पहुँचा । वह इंद्र के सिंहासन पर बैठकर इंद्रसहित सब देवताओं की परिचर्याएं प्राप्त करने लगा और सारे लोकों को अपने प्रभाव से आतंकित करने लगा । उसने ऋषियों के यज्ञ-याग में विघ्न पैदा किये, उनकी तपस्या में बाधाएं उपस्थित कीं और इस तरह सबको संतप्त कर दिया ।

इंद्र आदि सब देवता ब्रह्मा की सेवा में पहुँचे और उनसे निवेदन किया कि उनसे वर प्राप्त करके तारक को अभिमान हो गया है और वह घमण्ड में चूर होकर उन्हें अनेक यातनाएं पहुँचा रहा है ।

ब्रह्मा तारक के पास गये और उसे समझाया, "देखो, तुमने तीनों लोकों पर विजय पायी है । तुम शोणित पुर में ही रहो और वहीं से तीनों लोकों पर शासन करते रहो । स्वर्ग पर इंद्र का ही आधिपत्य रहने दो । तुम्हारे और देवताओं के बीच शत्रुता किसलिए ?"

तारक ने ब्रह्मा के हितवचनों को स्वीकार किया और स्वर्ग इंद्र को दे दिया । वह शोणितपुर लौटा और वहीं से तीनों लोकों पर शासन करने लगा । वह ईश्वर की आराधना करता और सुखपूर्वक अपने दिन बिताता ।

इंद्र ने स्वर्ग को फिर से प्राप्त तो कर लिया, पर उसे तारक के आधिपत्य में शासन करना पड़ता था । एक दिन अत्यन्त दुखी होकर उसने अपने गुरु बृहस्पति को बुलाया और निवेदन किया, "गुरुदेव ! मैं तीनों लोकों का अधिपति हूं, फिर भी मुझे दुर्भाग्य से तारक के अधीन रहना पड़ता है । मैं उसका सेवक हूं, यह बात मुझे बहुत अधिक पीड़ित करती है । इस प्रकार अपमानित होकर जीने की अपेक्षा तो मर जाना श्रेष्ठ है । मेरे इस अपमान का प्रतिकार तारक की मृत्यु है । आप तो सर्वज्ञ हैं । तारक की मृत्यु का कोई उपाय हो तो बताइये !"

"हमें इस विषय में ब्रह्मा की सम्मति लेना

श्रेष्ठ है । तारक के अभ्युदय का कारण वे प्रजापति ही हैं ।" वृहस्पति ने कहा ।

इसके बाद सब लोग ब्रह्मा के पास पहुँचे। उनसे प्रार्थना की कि वे तारक की मृत्यु का कोई उपाय बतायें ।

"शिव के अंश से जन्मे बालक के द्वारा ही तारक की मृत्यु संभव है, अन्य कोई उसे नहीं मार सकता, मैंने तारक को यह वरदान दिया है। शिव सतीदेवी की मृत्यु से दुखी होकर वैरागी बन गये हैं और कैलास-पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं। सतीदेवी ने हिमवान की पुत्री के रूप में जन्म लिया है और वे शिव की परिचर्या कर रही हैं। हिमवान-पुत्री पार्वती शिव को अपने पति के रूप में पाना चाहती हैं। अगर तुम लोग किसी उपाय से पार्वती के प्रति शिव के हृदय में मोह उत्पन्न कर दो तो उनका विवाह हो जाये। शिव और पार्वती से उत्पन्न पुत्र निश्चय ही तारक का संहार करेगा।" ब्रह्मा ने देवताओं को सब समझा कर विदा किया ।

ब्रह्मा के मुख से तारक की मृत्यु का रहस्य जानकर देवता बहुत प्रसन्न हुए। वे स्वर्ग लौट आये और इंद्र ने अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए कामदेव को बुलाया। कामदेव के आते ही इंद्र ने उसका अत्यन्त प्रेम से स्वागत किया और सिंहासन पर बिठाकर अनुरोध के स्वर में बोले, "हे मन्मथ ! तारक ने ब्रह्मा से वर प्राप्त करके तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर ली है। अब वह घमण्ड से चूर होकर देव-ऋषियों को सताता हुआ उनकी तपस्या और उनके यज्ञ-अनुष्ठानों में बाधा डाल रहा है। मैं तीनों लोकों पर शासन करता हूं, पर वह मुझ पर शासन करता है। उसकी मृत्यु शिव के अंश से उत्पन्न बालक के द्वारा ही संभव है। भगवान शिव कैलास पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं और देवी पार्वती उनकी परिचर्या करती हैं। पार्वती जब शिव के पास हों तब तुम शिव के हृदय में पार्वती के प्रति मोह-आकर्षण पैदा करो !"

इंद्र का उद्देश्य जानकर कामदेव भयभीत हो गया। वह विकल होकर बोला, "शिव के हृदय में पार्वती के प्रति मोह पैदा करना क्या मेरे लिए संभव है ? शिव महान तपस्वी हैं। अगर कुपित होकर उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोल दिया तो

तीनों लोक उसकी अग्नि में भस्म हो जायेंगे।"

कामदेव का भय और उसका कारण देखकर इंद्र ने उसे धीरज दिया और उसे प्रोत्साहित करते हुए बोले, "काम ! यह तुम क्या कहते हो ? तीनों लोकों में ऐसा कौन है जो तुम्हारे वश में न आजाये ? तुम्हारे कारण ही सृष्टि का यह क्रम चल रहा है। तुम्हारे कारण ही जगत में अद्भव और विकास है। ऐसा कौन है, जिसकी तपस्या तुम्हारे पुष्प बाणों के सामने टिक जाये। फिर यह तो देवताओं का प्रयोजन है। तुम्हारे द्वारा ही जगत की रक्षा होनी है। तुम्हारी मदद के लिए तुम्हारे साथ मलयमारुत, वसन्त, शुक-पिक जायेंगे। हम भी तुम्हारे आसपास रहकर तुम्हारी मदद करेंगे। तुम शिव पर अपने बाणों का प्रहार करके उन्हें काम के अधीन कर दो।"

इंद्र से अपनी प्रशंसा-सतुति सुनकर कामदेव मन्मथ फूला न समाया। उसने शिव पर विजय प्राप्त कर उनके हृदय में पार्वती के प्रति कामभाव जागृत करने का निश्चय कर लिया।

कामदेव ने अपने पाँचों पुष्प-बाण संभाले और वसन्त को साथ लेकर शुक-वाहन पर चल पड़ा। भगवान शिव बेल-वन में तपस्या कर रहे थे। मन्मथ वहाँ पहुँच कर एक गुप्त प्रदेश में छिप गया और पार्वती के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा।

कामदेव के प्रवेश करते ही बेलवृक्षों से भरा वह वन वसन्त की शोभा से भर उठा। सभी वृक्षों में नयी कोंपलें निकल आयीं और सारे वृक्ष पुष्पित हो उठे। शुक-पपीहा और कोयल की मधुर पुकार से वन-प्रान्त मुखरित हो उठा। तभी पार्वती अपनी सखियों के साथ उस बेल-वन में पहुँची। वे अपने साथ फल-फूल और सुगन्धित द्रव्य लेकर आयी थीं। वन की वसन्त श्री को देखकर पार्वती को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और उनके हृदय में मधु-संचार होने लगा। पार्वती शिव के निकट पहुँचीं।

शिव ने आँखें खोलकर पार्वती की ओर देखा। पार्वती आज उन्हें कुछ नवीन-सी प्रतीत हुईं। शिव ने इस परिवर्तन के कारण पर विशेष ध्यान नहीं दिया और वे आँखें बन्द कर पुनः

तपस्या में लीन हो गये ।

पार्वती ने प्रतिदिन की भाँति शिव का पूजाराधन किया, षोडश उपचार कर उन्हें प्रणाम किया और उनका ध्यान करते हुए उनके सामने खड़ी रह गयीं । शिव ने पुनः आँखें खोलकर पार्वती को देखा और मोहित होकर उन्हें एकटक देखते ही रह गये ।

इसके बाद पार्वती ने शिव से विदा ली और घर लौटने के लिए उद्यत हुईं । तभी कामदेव ने अपने पाँचों पुष्पबाणों को शिव के हृदय पर निशाना बनाकर एक-एक कर छोड़ दिया । कामदेव के बाणों में अरविन्द, अशोक, आम्रपुष्प और नवमल्लिका के बाण शिव को विचलित नहीं कर पाये, पर पाँचवें नीलोत्पल बाण ने शिव के हृदय को बींध दिया । उसके प्रहार से शिव विचलित हो उठे और क्रोध में आकर चिल्ला उठे, "यह कौन दुष्ट है, जिसने मुझ पर पुष्पबाणों का प्रहार किया है ?" वे धरती पर पैर पटक कर उठ खड़े हुए और अपना तीसरा नेत्र खोल दिया ।

शिव का तीसरा नेत्र खुलते ही उसके भीतर से अग्निज्वालाएं निकल आयीं और सारा वन भस्मीभूत हो गया । कामदेव भी उस अग्नि-ज्वाला में जलकर राख होगया ।

तभी इंद्रादि देवता शिव के निकट गये और हाथ जोड़ उनकी स्तुति करने लगे । शिव शान्त और प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना तीसरा नेत्र बन्द कर अग्निज्वालाओं को वापस ले लिया । उसी समय कामदेव की पत्नी रतीदेवी शिव के समीप आयी और प्रार्थना करने लगी, "हे सदाशिव ! इस कार्य में मेरे पति का कोई दोष नहीं है । मेरे पति को इंद्रादि देवताओं ने प्रेरणा दी कि आपके द्वारा पार्वती के गर्भ से पुत्र उत्पन्न हो ताकि वह तारक-वध कर देवताओं को अभयदान दे । इसी आशा से देवताओं ने आपके हृदय में पार्वती के प्रति मोह पैदा करने के लिए मेरे पति से अभ्यर्थना की । आप हमारा अपराध क्षमा करें और मुझे पति-भिक्षा दें । हे प्रभु ! आप पार्वती से विवाह कर जगत की रक्षा करें ।"

लोभ का फल नीचा

बगदाद के पास एक छोटे शहर में एक कसाई रहता था। उसका नाम इस्माइल था। उसकी दूकान के पास गोश्त की और कोई दूकान न थी, इसलिए उसका व्यापार खूब चलता था।

एक दिन की बात है इस्माइल की दूकान में एक बूढ़ा आदमी आया। उसकी पोशाक से साफ़ नज़र आता था कि वह एक परदेशी आदमी है।

उस बूढ़े परदेशी ने इस्माइल से कहा, "भाई, सुनो, मुझे एक सेर नरम गोश्त दे दो।"

"नरम गोश्त के लिए तो तुम्हें चांदी का एक सिक्का देना पड़ेगा, समझें!" इस्माइल ने कहा।

बूढ़े ने अचकचाकर पूछा, "क्या कहा? एक सेर गोश्त की क़ीमत चांदी का एक सिक्का होता है? हमारे देश में तो चांदी के एक सिक्के से पूरी एक भेड़ ही ख़रीद सकते हैं।"

बूढ़े की बात सुनकर इस्माइल को गुस्सा आगया। ऊंची आवाज़ में बोला, "तुम्हें सही दाम नहीं देना है तो मेरी दूकान से बाहर निकल जाओ। जहाँ तुम्हें सस्ते में मिलता हो, वहीं जाकर खरीद लो। बेकार बहस करते हुए मेरा वक्त बरबाद न करो। तुम अभी यहाँ से भाग जाओ, वरना तुम्हारी गर्दन पकड़ कर बाहर फेंक दूँगा।"

इस पर बूढ़ा मंद-मंद मुस्कराया और दूकानदार को चांदी का एक सिक्का देकर गोश्त लेकर चला गया।

अगले दिन वह परदेशी बूढ़ा फिर इस्माइल की दूकान में आया। उसने इस बार गोश्त की क़ीमत नहीं पूछी। एक सेर गोश्त लिया और चमचमाता हुआ चांदी का एक सिक्का इस्माइल के हाथ में रख दिया।

इस्माइल ने वह सिक्का बूढ़े को लौटा दिया

'अरब की रातों' से एक कहानी

और बोला, "आज गोश्त का भाव बढ़ गया है। सेर भर मांस की क़ीमत आज चांदी के दो सिक्के है।"

बूढ़ा फिर मंद-मंद मुस्कराया और इस्माइल के हाथ में चांदी के दो सिक्के रखकर सेर भर गोश्त ले गया।

पर बात यहीं ख़त्म नहीं हुई। रात में इस्माइल ने देखा, बूढ़े के दिये चांदी के तीनों सिक्के काठ के तीन टुकड़ों में बदल गये हैं। तब उसके आश्चर्य की कोई सीमा न रही।

तीसरे दिन फिर वह बूढ़ा दूकान में आया। इस्माइल ने उछल कर उसकी गरदन पकड़ ली और बोला, "अरे बुड्ढे! तेरी यह हिम्मत! मुझे ही चकमा दे रहे हो? अब मैं तुम को जान से नहीं छोड़ूँगा"

बूढ़ा जरा भी विचलित नहीं हुआ। उसने धमकी के स्वर में कहा, "चकमा मैं नहीं, तुम दे रहे हो!"

उसका जवाब सुनकर इस्माइल दांत पीस-कर बूढ़े की पिटाई करने लगा। बूढ़ा जोर से चिल्ला उठा, "भाइयो! मुझे बचाओ, अरे कोई बचाओ!"

बूढ़े की चीख-चिल्लाहट सुनकर उस रास्ते से गुज़रने वाले सभी लोग वहां पर इकट्ठे हो गये।

"यह धूर्त दो दिन से मुझे नकली सिक्के देकर भेड़ का गोश्त ले जा रहा है। आज ही मुझे इस बात का पता चल गया। इस की करतूत की सजा मिलनी चाहिए।" इस्माइल ने लोगों को बताया।

"आप सब लोग सुनें। यह जो खराब गोश्त बेचता है, उसके लिए चांदी के सिक्के चुकाने की बेवकूफ़ी मैं नहीं कर सकता। यह दूकानदार भेड़ का गोश्त कहकर कुत्ते का गोश्त बेचता है। मैं यह बात आप सब पर खोल दूंगा, इस डर से यह उलटे मुझ पर ही दोष लगा रहा है और मुझे धूर्त कह रहा है। इस तरह से वह अपनी गलती छिपाना चाहता है।" बूढ़े ने कहा।

अब भीड़ में से एक आदमी सामने आया और बूढ़े को चूनौती देता हुआ बोला, "क्या तुम अपनी बात साबित कर सकते हो?"

"मुझे पक्का भरोसा है कि मैं साबित कर सकता हूं।" यह कहकर बूढ़ा उन लोगों को दूकान के पीछे के अहाते में ले गया। वहां का दृश्य देखकर लोग एक दम अचरज में आगये।

इस्माइल के अहाते में बंधी हुई सारी भेड़ें कुत्तों में बदल गयी थीं। यह सब देखकर इस्माइल का दिमाग चकरा गया। उसे संभलने में कुछ क्षण लगे, फिर वह भीड़ को समझाने की कोशिश करने लगा कि बूढ़ा कोई जादूगर है, तंत्र-मंत्र जानता है।

लोगों ने कुछ नहीं सुना और उसकी पिटाई करते हुए उसे शहर के शासक अमीर के पास ले गये।

अमीर ने सारी बातें सुनीं और गुस्से में भरकर इस्माइल से बोला, "अरे दुष्ट! मैं तुझे जानता हूं। मेरा रसोइया भी कई दिनों से तेरी ही दूकान से गोश्त ख़रीद रहा है। मैं तेरी हड्डी-पसली एक कर दूंगा।"

अमीर ने अपने सामने रखी बड़ी पोथी के पन्ने उलटे और गहरी सांस लेकर कहा, "तेरी क़िस्मत अच्छी है। तूने जो गुनाह किया, उसके लिए मैं तुझे मौत की सज़ा देना चाहता था। लेकिन हमारे पवित्र ग्रंथ के अन्दर यह दंड-विधान के विरुद्ध है।"

अमीर फिर इस्माइल की तरफ़ घूमा और बोला, "अरे कसाई! तूने जो धन जमा किया है, उसके सहित तेरा घर और तेरी दूकान — सब कुछ सुलतान के अधीन हो गया है।"

भटों ने अमीर के आदेशानुसार इस्माइल को सौ कोड़े लगाये, उसकी दायीं आँख फोड़ डाली और उसे लेजाकर देश की सीमा के पार फेंक दिया।

इस्माइल को यह सोचकर पछतावा होने लगा कि धन के प्रति अधिक लालच ने आज उसे इस दशा में पहुँचा दिया। वह अपनी ऐसी ही बुरी दशा में किसी दूसरे शहर में पहुँचा। वहां वह भीख मांग कर गुजारा करने लगा। एक दिन उसके साथी भिखारियों ने बातों ही बातों में उससे कहा, "देखो भाई इस्माइल! इस शहर का सुलतान शकुन-अपशकुन पर विश्वास करता है। अगर कभी उसे कोई काना दिख जाता है तो वह अपशकुन मानकर उसे

कोड़े लगाने की सज़ा देता है। और दायीं आँख फूटी होने पर तो उस आदमी को फांसी की सज़ा निश्चित है। इसलिए तुम हमेशा अपने को सुलतान की आँख के सामने पड़ने से बचाते रहना।"

कुछ दिन निकल गये। एक रोज़ इस्माइल भीख मांगता हुआ राजमार्ग से जा रहा था। तभी अचानक कोलाहल होने लगा। कुछ घुड़सवार भीड़ को हटने की चेतावनी देते हुए गश्त लगाने लगे। इस्माइल ने इस धमाचौकड़ी का कारण पूछा तो पता लगा कि इस रास्ते से सुलतान की सवारी निकलनेवाली है। उसे अपने साथी भिखारियों की सलाह याद आगयी और वह दौड़कर झट से एक खुले दरवाज़े वाले मकान में घुस गया।

दूसरे ही क्षण तीन कद्दावर लोगों ने उस पर हमला बोल दिया और गरज कर बोले, "अरे बदमाश! आज तू हमारे हाथ आ ही गया। तीन दिन से तू हमारी गैर हाज़िरी में हमारी रसोई की सारी चीज़ें चट कर जा रहा था।" उन्होंने उसकी खूब मरम्मत की और गली में धक्का दे दिया।

थोड़ी देर बाद इस्माइल होश में आया। उसे अपनी दुर्दशा पर रोना आ गया। 'इस शहर में रहना अब हितकर नहीं' ऐसा सोचकर वह दूसरे शहर में चला गया। इस बीच इस्माइल के छोटे भाई को अपने बड़े भाई की दुर्गति का हाल मालूम हो गया। वह इस्माइल का पता लगाकर उसे अपने घर ले गया।

इस्माइल ने अपनी सारी दास्तान छोटे भाई को सुनादी और गहरी सांस लेकर उससे कहा, "भाई अनवर। मेरे लालच ने ही मुझे इतनी मुसीबत में डाला है। तुम भी एक कसाई हो और गोश्त बेचकर गुज़ारा करते हो। मेरी तरह तुमने भी खूब कमाया होगा, लेकिन एक बात याद रखना, कभी लोभ में मत पड़ना। लोभ का फल नीचा होता है। पराये देश से जो लोग हमारे यहां आते हैं, वे हमारे मेहमान होते हैं। उन्हें कभी धोखा देने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।"

पक्षी और जानवर

सौ साल पहले अमरीका में पूर्वी तथा पश्चिमी तटों को जोड़ते हुए एक लंबे रेलमार्ग का निर्माण किया गया था। पूर्वी-पश्चिमी समुद्र-तटों के बीच आवागमन और विकास के लिए यह रेलमार्ग अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। इस रेलमार्ग के निर्माण-काल में रेल-मज़दूरों के खाने के लिए वहां पर विशेष रूप से पाये जानेवाले जंगली भैंसे बहुत बड़ी संख्या में मारे गये। इस रेलमार्ग का निर्माण अठारह माह तक चला। बफलोबिल नाम के प्रमुख शिकारी ने इस अवधि में प्रतिदिन उनहत्तर भैंसों के हिसाब से कुल चार हज़ार भैंसों का शिकार करके रेल-कर्मचारियों को प्रतिदिन जंगली भैंसों का बलवर्धक आहार उपलब्ध कराया।

इसके विपरीत उन्हीं जंगली भैंसों की सुरक्षा के लिए अमरीका और कनाडा में कड़ी कार्रवाई की गयी। इस समय अमरीका में ३० हज़ार और कनाडा में २० हज़ार जंगली भैंसे स्वेच्छापूर्वक विचरण कर रहे हैं।

भारत में बैसन नाम से पुकारे जानेवाले ये जंगली भैंसे अत्यन्त प्राचीन काल से पहाड़ी जाति के लोगों के डेरे तथा पोशाकों के लिए आवश्यक अपना चर्म प्रदान करते आ रहे हैं। ये लोग उनका मांस भी खाते हैं।

बहुत मज़बूत सिरवाले ये भैंसे प्राचीनकाल में चारे के लिए वसन्त ऋतु में उत्तरी दिशा की ओर, शरद ऋतु में दक्षिण दिशा की ओर—दल बांध कर पहाड़ों-घाटियों तथा नदी-नालों को पार करते हुए विचरण किया करते थे। इनकी इस यात्रा में आगे की तरफ नर भैंसे होते तथा पीछे मादा भैंसे और बछड़े होते थे। अगर रास्ते में किसी तरह का कोई ख़तरा उपस्थित हो जाता तो सबसे पहले भैंसे उसका सामना करते थे।

एक ऐसा समय भी था, जब यूरोप, एशिया और उत्तर अमरीका के राष्ट्रों में इन भैंसों को घूमते हुए देखा जा सकता था। उस समय इन तीनों देशों को जोड़ने वाले भूभाग मौजूद थे। फिर वे भी कालक्रम में जलमग्न हो गये और उन्होंने जलसन्धियों का रूप धारण कर लिया। देशों को जोड़ने वाले भूखंडों के लुप्त हो जाने के कारण इन भैंसों का आवागमन भी अलग-अलग देशों में सीमित हो गया।
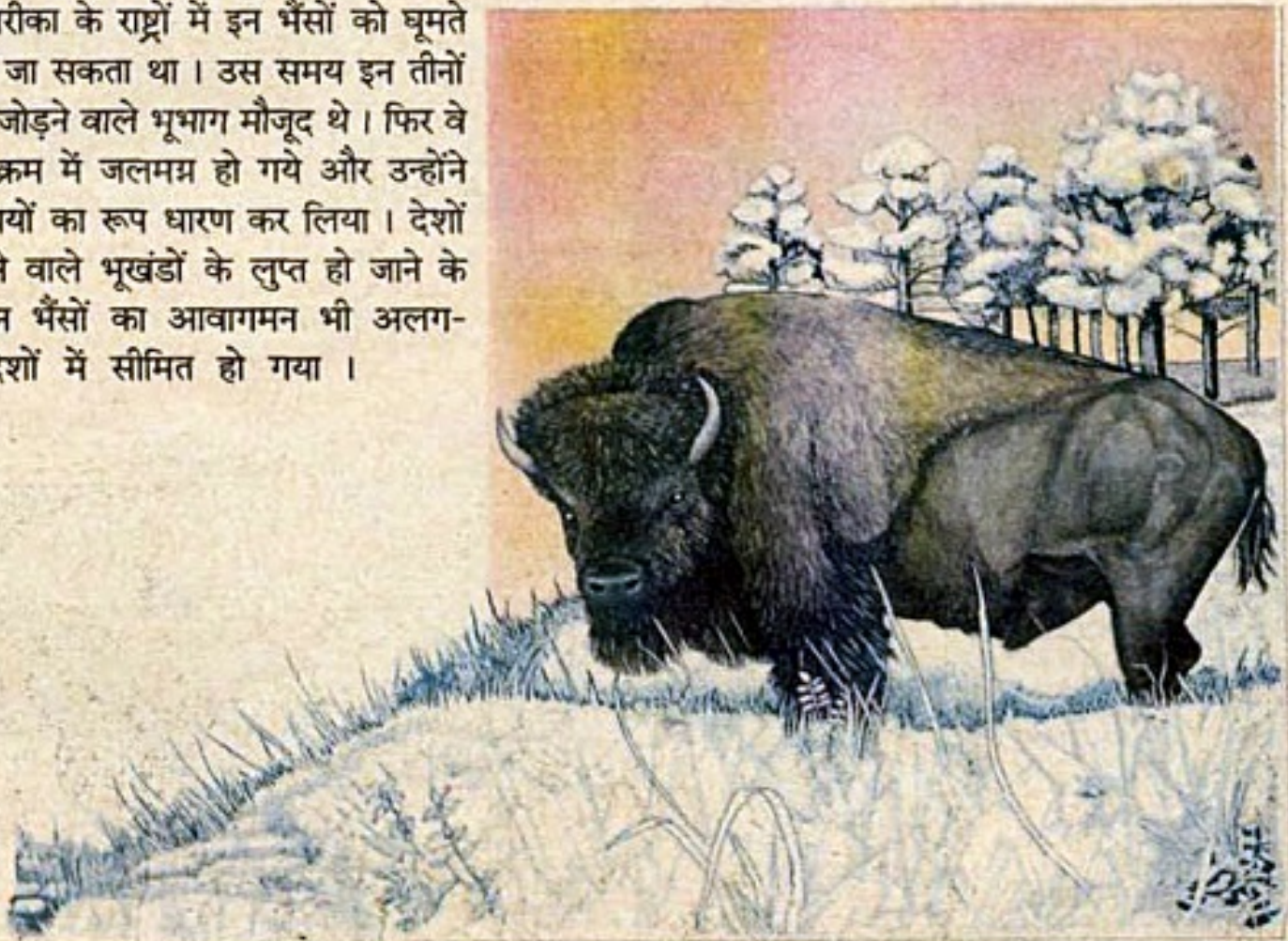
फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ जुलाई १९८५ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी ।

M. Natarajan

M. Natarajan

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों । ★ मई १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए । ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा । ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें : **चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६**

मार्च के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : समस्याओं का हल !

द्वितीय फोटो : हल जीवन का सम्बल !!

प्रेषक : घनश्याम भारती, लता निवास, दौलतगंज, ग्वालियर (म. प्र.) ४७४००१

'क्या आप जानते हैं' के उत्तर

१. मेगस्थनीज़ २. १७५७ ई० में सुराजुद्दौला और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच ३. जार्ज पंचम ४. चेतक ५. ग्रेट ब्रिटेन.

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 188, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

कमाल का मज़ा...गोल्ड स्पॉट का मज़ा

नई सुबह हुई, नई धूप जगी
नया सनलाइट
डिटर्जेंट पाउडर
आपके कपड़ों में धूप सी चमक दमक जगाए।
आप भी अपने घर में सनलाइट की जगमगर ले आइए. नया सनलाइट डिटर्जेंट पाउडर वज़न में एकदम हल्का है, लेकिन असर में कहीं ज़्यादा है. क़ीमती पाउडरों जैसा कारगर, पर फिर भी बहुत किफ़ायती!
सनलाइट में एक ख़ास पदार्थ है, जो साधारण पाउडरों में नहीं. यह कपड़ों की रग रग से मैल निकाल कर उनमें कुदरती चमक दमक ले आता है. सनलाइट से न हाथों को तकलीफ़, न कपड़ों को नुकसान और इसकी खुशबू ऐसी ताज़ा भीनी भीनी है, जो आपके कपड़ों को भा जाएगी. आप भी सनलाइट की चमक दमक अपने जीवन में ले आइए.
एक बार आज़मा कर तो देखिए–सिर्फ़ रु.६.३५ में.
सिर्फ़
रु. ६.३५*
*(स्थानीय कर अतिरिक्त)
Double Power
SUNLIGHT
DETERGENT POWDER
For a brighter wash
आपके कपड़ों में धूप सी चमक दमक का वादा
हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन
OBM/2568 Hin

जब दाँतों की सड़न को मेरे बेटे ने पहचाना

फोरहॅन्स फ़्लोराइड

स्वाद वाला, झागवाला टूथपेस्ट
दाँत और मसूड़े दोनों की सुरक्षा करता है.
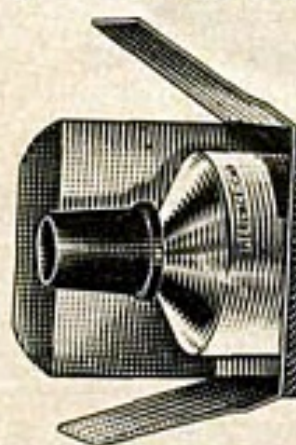
331 F 183 HIN

अपना संग्रह पूरा करने के लिए
आपको इनमें से किन टिकटों की जरूरत है?
आज आप अपनी जरूरत के हर विषय का आर्डर दे सकते हैं —
और अपने एलबम को सचमुच तेजी से बढ़ा सकते है!
टिकटों के आप जैसे खास शौकीन भी यह जान कर हैरान होंगे कि चिनार क्या गज़ब के टिकट भेज सकते हैं। इन में नए टिकट भी हैं, और पुराने भी, डाक की मोहर लगे हुए और बिना मोहर वाले, ऐसे डिजाइन्स, रंग रूप और आकार जो आपने पहले कभी नहीं देखे। एक ओर अन्तरिक्ष और खेल कूद के विषय हैं और दूसरी ओर फूल और सोवियत इतिहास।
मिलने पर अदायगी
इन्हें पाना भी बहुत आसान है। कूपन भर कर चिनार को भेज दीजिए। अगर आप अग्रिम भुगतान करें: न्यूनतम आर्डर रु.50.00+रु.5.00 डाक खर्च, रु.100.00 या अधिक के आर्डर पर डाक खर्च मुफ्त। अगर आप वी.पी.पी. द्वारा आर्डर करें: न्यूनतम आर्डर रु.100.00+रु.5.00 डाक खर्च
टिकटों के सभी आर्डरों पर 10% बिक्री कर अतिरिक्त वी.पी.पी. आर्डर के लिए अपने अभिभावकों की अनुमति ले लीजिए।
जल्दी कीजिए! आज ही कूपन भेजिए।
चिनार कौन है?
— टिकटों के आयात और निर्यात में भारत में सबसे बड़े
— सोवियत संघ के टिकटों के एकमात्र भारतीय वितरक
— आपका संग्रह बढ़ाने में आपके मददगार
चिनार-शौकीनों के लिए नित नए टिकटों का आयात
मन-पसन्द विषयों और पैकेट्स पर निशान लगा दीजिए:
विषय टिकट 10 25 50 100
□ अन्तरिक्ष 3.75 8.00 15.00 35.00
□ खेलकूद 3.75 8.00 15.00 35.00
□ परिवहन 3.75 8.00 15.00 35.00
□ कला 3.75 8.00 15.00 35.00
□ फूल 3.75 8.00 15.00 —
□ जीवजन्तु 3.75 8.00 15.00 —
□ समुद्री जीवन 3.75 8.00 15.00 30.00*
□ चित्रकला 3.75 8.00 15.00 —
□ लेनिन 3.75 8.00 15.00 25.00**
□ फल और जीव-जन्तु — — — 35.00
□ मॉन्जोरे — — — 30.00
□ साइबीरिया व दूर पूर्व — — 30.00*** —
□ शान्ति व मैत्री — 8.00 — 25.00
□ अक्तूबर क्रान्ति 3.75 — — 25.00
□ मिले-जुले 3.75 8.00 15.00 25.00
* 90 टिकट ** 85 टिकट *** 53 टिकट
नाम
आयु स्कूल
पता
भुगतान साथ में □ वी.पी.पी. आर्डर □
चिनार एक्सपोर्ट्स प्रा० लि०
रजिस्टर्ड ऑफिस :
101-ए सूर्य किरण
कस्तूरबा गांधी मार्ग
नई दिल्ली - 110 001.
टिकटें — जिनका संग्रह आपके साथ साथ बढ़ता जाता है।
आपके हर ऑर्डर पर 10 टिकटें मुफ्त!
ПОЧТА СССР
Игры XXII Олимпиады Москва 80
МЕЖДУНАРОДНЫЕ